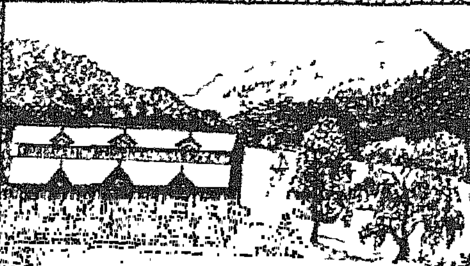




एक बात

किसी भी देशकी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का ज्ञान मनुष्य को वहां के साहित्य के अध्ययन से प्राप्त हो जाता है। इसीलिये विद्वानों ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है। श्यामा में भी समाज का अपना स्पष्ट स्वरूप परिलक्षित होगा, हमारा विश्वास है। यद्यपि पुस्तक की सारी बातें काल्पनिक हैं; तथापि इसके पढ़ने से मालूम होता है कि घटनाएं सच्ची हैं। समाज के चित्रण में लेखक को काफी सफलता मिली है। इसके अध्ययन से त्याग, बलिदान और सेवा की प्रेरणा मिलती है। बहुत कम उपन्यास ऐसे मिलते हैं, जिनमें अश्लीलता नहीं रहता है, श्यामा में भी यह विशेषता देखने को मिलता है। सौन्दर्य, प्रेम, विरह आदि के दृश्य उपस्थित करके भी लेखक ने कोई भद्दा चित्र या अश्लील बातें सामने नहीं आने दी है। साहित्य और समाज को इसी प्रकार की रचनाओं की आवश्यकता है। आशा करता हूं, लेखक भविष्य में अपनी बहुमूल्य कृतियों द्वारा हिन्दी की सेवा करता रहेगा।

श्यामा

(अन्तर्राष्ट्रीय मौलिक सामाजिक उपन्यास)

लेखक :—

त्रिभुवनपति सिंह

प्रकाशक :—

मिश्रा पुस्तक भण्डार
१७५/१, हरीसन रोड, कलकत्ता-७

प्रथम बार] १५ अगस्त १९५६ ई० [मूल्य ३॥) सजिल्द

प्रकाशक :—
जोखन मिश्र
मिश्रा पुस्तक भंडार
१६५।१, हरीसन रोड,
कलकत्ता।

मुद्रक :—
सुरेशचन्द्र जैन
जवाहिर प्रेस
१६१।१, हरीसन रोड,
कलकत्ता–७

भूमिका

दैनिक लोकमान्य के सह० सम्पादक श्री त्रिभुवनपतिजी भावुक तथा अध्यवसायी साहित्य-शिल्पी हैं। प्रकृत तथा छद्म नामों से इनके कई सौ गल्प और निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। विस्तृत पर्यवेक्षण के फलस्वरूप इनकी अनुभूति अत्यन्त मर्म-स्पर्शी है। प्रस्तुत उपन्यास में इन्होंने जीवन और जगत को उदार तथा सही दृष्टिकोणों से देखने-परखने का उदात्त प्रयत्न किया है। इस उपन्यास के पात्रों की रंगभूमि नगर और ग्राम के उस सन्धि-स्थल पर है जहां का जीवन हमारे युगके सम्मुख विराट प्रश्न-चिह्न के रूप में अंकित प्रतीत होता है। पात्रों के चित्रण में यथार्थता है। इस चित्रण के माध्यम से हमारे समाज की नारी-विषयक ज्वलन्त समस्याएँ विकराल रूप धारण करके पाठकों के दृष्टिपथ पर भासमान होने लगती हैं और हम उनपर चिन्तन करने के लिए विवश हो जाते हैं। आदर्श और यथार्थ के सहज-स्वाभाविक सामंजस्य के द्वारा इन्होंने व्यक्ति और समाज के जिन चिरन्तन सम्बन्ध तत्वों का विशद कलात्मक विवेचन किया है उनसे हमारे दृष्टिकोण को व्यापकता का ही उपहार मिलता है।

लेखक पूर्व-ग्रह के दोष से मुक्त है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उपन्यास में सर्व-प्रमुख होने पर भी 'श्यामा' का चरित्र 'प्रभा' और 'दयाशंकर' के व्यक्तित्व के सम्मुख अभिभूत प्रतीत होता है।

त्रिभुवनपतिजी की उक्तियां कितनी चुभनेवाली और सूक्ष्म-दृष्टि की परिचायिका हैं इसका स्पष्टीकरण इसी उपन्यास के दो-तीन उद्धरणों से पर्याप्त रूप में हो जायगा—

(१) आभूषण सुख के समय का शृङ्गार होता है और विपत्ति के समय का आहार (पृष्ठ-संख्या ५०)।

(२) नाव तरंगों पर उछलती हुई बुद्धिहीन व्यक्ति के समान लक्ष्य-भ्रष्ट होकर जा रही थी (पृष्ठ-संख्या ७७)।

(३) आकाश में तारे और नगर में दीपक जगमगा रहे थे। (पृष्ठ-संख्या १०२)।

(४) यह तो आपकी भ्रान्ति है। प्रथा और धर्म में कौन-सा सम्बन्ध (पृष्ठ-संख्या १५७)।

प्रूफ-संशोधन की असावधानी यत्र-तत्र खटकती है, किन्तु इससे लेखक की कृति की सफलता में कोई बाधा नहीं पड़ती।

आशा है कि इस उपन्यास से हमारे सुषुप्त समाज के जागरण में सहायता मिलेगी और हिन्दी-जगत में इसका उचित आदर होगा। मैं यही कामना करता हूं कि लेखक की कला का दिनो-दिन अधिकाधिक विकास हो और वह हमारे उपन्यास-जगत में नयी परम्परा की सृष्टि कर सके।

—प्रोफेसर प्रबोध नारायण सिंह,
अध्यक्ष, हिन्दी - विभाग
जयपुरिया कालेज, कलकत्ता।

श्यामा

१

सौन्दर्य और यौवन के मिश्रण ने श्यामा में अनुपम छटा उत्पन्न कर दी, जिससे वह सौरभ-युक्त सुन्दर पुष्प के समान आकर्षक बन गयी। भौंरे उसे देखकर ललच उठे, पर वह चम्पक प्रसून के समान निर्भीक होकर हंसती रही। यौवन के इस साम्राज्य में पदार्पण करते ही उसमें परिवर्तन के कुछ लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। उसकी चाल में अल्हड़पन, आँखों में मादकता और जीवन में मस्ती आ गयी। वह स्वयं अपने को किसी दूसरे संसार में पा रही थी, जहाँ की बयार में नशा का अनुभव कर रही थी। उसके स्पर्श से ही उसका मन चंचल हो उठा। उस संसार की मिट्टी में उसने कम्पन देखा, जिससे उसके पग स्थिर नहीं हो रहे थे। मतवाली दुनिया की अट्टालिका से झांककर उसने नीचे की ओर देखा, जहां उसका अबोध बचपन ऊपर की ओर देखकर हंस रहा था। इन दोनों जीवन में कितना अन्तर था,

वह अच्छी तरह समझ रही थी। उसे अब भी स्मरण है कि बाल्यावस्था में जब आमकी डालियों पर कोयल कू-कू करती थी और पपीहे पत्तों की आड़ में पी-पी की रट लगाते थे, तब वह उन्हें चिढ़ाने के ख्याल से अपने आंगन और दरवाजे से कू-कू और पी-पी करने लगती थी। लेकिन, अब पपीहे और कोयल की उसी मधुर तान से उसकी हृद्तंत्री के तार झनक उठते थे। कई वर्ष पहले उसने सावन और भादों की घटाओं में जलकण देखा था, जिससे आंखें शीतल हो जाती थीं, लेकिन अब वह उसी घटा में ज्वाला देख रही थी। इससे उसका हृदय दग्ध हो रहा था। वसंत के समीर में वह तूफान देख रही थी।

श्यामा अपने जीवनके सोलहवें मधुमासमें प्रवेश कर गई थी। उसके काल्पनिक संसार में एक सुन्दर युवक आता। वह उसकी पत्नी बनती और बहुत आमोद-प्रमोद में अपना जीवन व्यतीत करती। उसके भाग्य पर उसकी सखी सहेलियां इर्ष्या करतीं।

२

पत्र-पत्रिकाओं में तिलक-दहेज के विरुद्ध आवाज देखकर भोलानाथ को विश्वास हो आता था कि शीघ्र ही यह समाज इस रोग से मुक्त होगा। अखबारों की कतरने वे संग्रह किया करते थे। समय पाकर उन कतरनों को प्रतिष्ठित और पढ़े-लिखे लोगों को दिखलाया करते थे। पर उन्हें यही उत्तर मिलता था कि इसे मानता कौन है ? उस समय निराशा की झलक उनके चेहरे पर दौड़ जाती थी।

श्यामा यौवन के साथ अठखेलियां खेलती हुई अपने जीवन-पथपर अग्रसर होती जा रही थी।

उसकी चढ़ती हुई जवानी देखकर उसकी मां राधा चिन्तित हो रही थी। वह भोलानाथ को बार-बार समझाती थी कि तिलक और दहेज दिये बिना घर और वर दोनों अच्छे नहीं मिल सकते हैं। अपने में उतनी शक्ति नहीं है कि दश पांच हजार रुपये देकर श्यामा को किसी अच्छे जमींदार के घर में व्याह दिया जाय। इसलिये सुयोग्य वर के साथ, वह गरीब हो कोई बात नहीं, उसकी शादी कर दी जाय, पर भोलानाथ उसकी बात मानने को तैयार नहीं थे।

किसी दिन भोलानाथ अपने पड़ोस में एक अच्छे प्रतिष्ठित और धनाढ्य व्यक्ति गिने जाते थे। वे दो गांवोंके जमीं-

दार भी थे। परन्तु सदा सबका भाग्य एक-सा नहीं रहता है। एक खूनके मामले में उनकी सारी सम्पत्ति स्वाहा हो गई। एक मकान और दो-चार एकड़ जमीन के अलावा उनके पास कुछ भी न बच रहा। पर इससे क्या हुआ ? सम्पत्ति गयी, शान तो नहीं गई। एक अच्छे घर में तिलक-दहेज दिये बिना श्यामा की शादी करने का उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया था। इसके लिये उन्होंने काफी परेशानी उठायी, पर सफलता कहीं भी नहीं हासिल हुई। एक दिन जब कि वे इसी चिन्तामें पड़े थे, एकाएक कृष्णकान्त का स्मरण हो आया। कृष्णकान्त एक अच्छे धनाढ्य व्यक्ति थे। भोलानाथ के दो गांव इन्होंने ही खरीद किये थे। कृष्णकान्त को उन्नीस-बीस वर्ष का एक पुत्र था, जिसका नाम था विजयकान्त। विजयकान्त का गौर शरीर, हृष्ट-पुष्ट देह और कामदेव के समान सुन्दर रूप उनके मनमें बैठ गया, इससे बढ़कर उनकी नजरों में दूसरा वर और घर श्यामा के योग्य नहीं जंचा।

उन्हें पूर्ण विश्वास था कि कृष्णकान्त उनकी पुरानी मित्रता और आज की असमर्थता का ख्याल कर श्यामा के साथ विजयकान्त का विवाह करने को तैयार हो जायेंगे। परन्तु, आशा पर पानी फिर गया, कृष्णकान्त ने स्पष्ट शब्दों में उन्हें उत्तर दिया कि आपके समान निर्धन व्यक्ति के घर में मैं अपने पुत्र की शादी नहीं कर सकता।

जब भोलानाथ खिन्न होकर उनके गांव से लौट रहे थे, तब

उन्होंने उनको एक वर का पता दिया, और कहा—"कंचनपुर में दौलतराम जी रहते हैं। वे बहुत ही धनाढ्य व्यक्ति हैं। आप उनसे अपनी पुत्री की शादी कर दीजिये। मेरा विश्वास है कि उनके यहां आपको तिलक-दहेज नहीं देना पड़ेगा। वे मेरे सम्बन्धी हैं, मैं जो कहूंगा वे करेंगे।"

भोलानाथ कंचनपुर पहुंचे। दौलतराम का घर खोजने में उन्हें कठिनाई नहीं उठानी पड़ी। चूना से पुता हुआ उनका विशाल भवन अलग से ही नजर आ रहा था। सिंह द्वार पर दो गजराज झूम रहे थे। देखते ही भोलानाथ का मन प्रसन्न हो उठा। उनका मान-सम्मान भी अच्छी तरह हुआ।

उनकी सेवा-सुश्रूषा में दौलतराम का विश्वसनीय आदमी कामेश्वर उपस्थित रहा। दौलत राम की अवस्था अधिक हो चुकी थी। श्वेत केश और टूटे हुए दांत उसके प्रमाण थे। भोलानाथने अपनी अस्वीकृति की सूचना कामेश्वर को दे दी, पर कामेश्वर तो वहां एजेंट का काम करता था। वह कैसे उन्हें वहां से जाने देता। उन्हें सान्त्वना देते हुए वह कहने लगा—"अवस्था पर ध्यान मत दीजिये, ऐश्वर्य-वैभव भी तो देखिये। मुफ्त में ऐसा वर मिलना आपके लिये कठिन हो नहीं, बल्कि असम्भव है। आपकी पुत्री यहां रानी बनकर रहेगी। दौलत राम की दो शादियां पहले हो चुकी हैं। उनकी दोनों पत्नियां जूही और चमेली अभी जीवित हैं। पर आपको

विश्वास होना चहिये कि आपकी पुत्रीके अधिकार में वे किसी भी हालत में हस्तक्षेप नहीं करेंगी।"

कामेश्वर की राय भोलानाथ को पसन्द आ गयी। शादी का लग्न-मुहूर्त आदि निश्चित कर उन्होंने अपने गांव रामपुर के लिये प्रस्थान किया।

३

रविवार का दिन था। न्यायालय बन्द रहने के कारण जयशंकर बाबू अपने किसी मित्रके यहां गये हुए थे। उनके पुस्तकालय में प्रभा अकेली बैठी हुई 'समाज' नामक पत्रिका में "नारी जाति का विकास" पढ़ रही थी। उस लेख का प्रत्येक शब्द उसके हृदयपर प्रभाव डाल रहा था। वह मन ही मन उस लेख के लेखक के प्रति, जिसकी आत्मा महिला समाज की दुर्दशा पर रो रही थी, कृतज्ञता प्रकट करती थी। वह सोचती थी कि अगर इस प्रकारके लेखक पांच प्रतिशत भी हों, तो समाज को जागृत होने में बहुत दिन नहीं लगेंगे। नारी की उपेक्षा तो इतनी बढ़ गयी है कि मानवता उसके सामने लज्जित हो जाती है। पुरुष जातिने तो नारी को अपने भोग-विलास का एक अनुपम साधन समझ रखा है। इसके अलावा ......।

इसी बीच किसी की पदध्वनि से उसका ध्यान भंग हुआ। वह सम्भल कर बैठ गई। और; आगन्तुक की ओर बड़े ध्यान से देखने लगी। बिखरे हुए केश और ढीले ढाले वस्त्र से वह एक कलाकार मालूम होता था। उसकी इस आकृति में भी शोभा थी, जिसे कोई भी देख सकता था। चौबीस-पच्चीस वर्ष का युवक एकान्त में एक युवती से बातें करते समय अपनी आंखें नीचे करले, यह कम महत्व की

बात नहीं थी। इससे उसके आत्मसंयम का सहज में ही परिचय मिलता था। युवक ने प्रश्न किया—"जयशंकर बाबू कहां हैं ?"

प्रभाने उत्तर दिया—"पिताजी बाहर गये हुए हैं। अगर आवश्यक काम हो तो बैठ जाइये।"

इसके बाद प्रभा पुनः अपने अध्ययन में लीन हो गई। वातावरण बिल्कुल शान्त था। हां घड़ी के 'टिक टिक" से वहां की शान्ति अवश्य कुछ भंग हो रही थी। एक घंटा के बाद जयशंकर बाबू का आगमन हुआ। युवक को देखते ही उन्होंने पूछा "जमानत पर छूट आये ?"

युवक ने उत्तर दिया—"पांच हजार की जमानत पर मुक्त हुआ हूं।" इसके बाद कागजों का बंडल उनके हाथ में उसने दिया। जयशंकर बाबू एक नजर से सभी कागजात देख गये। उन्होंने कहा—"इस मामले में कोई जान नहीं है, आप मुक्त हो जायेंगे, चिन्ता मत कीजिये। मैं स्वयं आप की ओर से बहस करूंगा। मेरे रहते आपको दण्ड मिल जाय; आश्चर्य का विषय होगा।"

पिता की आज्ञासे प्रभा ने दो प्याली चाय लाकर मेज पर रख दी। युवक ने कहा—"मैं चाय नहीं पीता हूं।" जयशंकर बाबू ने कहा—"हां, आपतो आदर्श पुरुष ठहरे।" युवक हंसने लगा। जयशंकर बाबू ने उसकी ओर इशारा करते हुए प्रभा से पूछा—"तुम इनको जानती हो ?"

प्रभा ने उत्तर दिया—"नहीं, मैं तो इन्हें नहीं जानती हूं। आपका परिचय क्या है ?"

जयशंकर बाबू ने कहा—"ये होनहार युवक हैं। इनका नाम दयाशंकर है। समाज में "नारी जातिका विकास" इन्हीं का लेख लिखा हुआ है।"

बहुत ही आश्चर्यचकित होकर प्रभाने पूछा—"यही दया-शंकर हैं ?"

जयशंकर बाबू ने उत्तर दिया—"हां इन्ही का नाम दयाशंकर है।" दयाशंकर को नमस्कार कर प्रभा ने कहा—"क्षमा कीजियेगा।"

जयशंकर बाबू ने कहा— "इनका परिचय यहीं तक सीमित नहीं होता है। और सुनो ! सेवा इनके जीवन का व्रत है। अपनी इसी भावना से प्रेरित होकर इन्होंने दौलत राम को शादी करने से रोका था। उन्होंने इनकी बात नहीं मानी। आखिर इस वृद्धावस्था में उन्होंने अट्ठारह वर्ष की नवयुवती का पाणिग्रहण किया। परन्तु; एक अजीब घटना घटी। शादी के दिन इन्होंने कुछ छात्रों और युवकों को लेकर सत्याग्रह कर दिया। दौलत राम ने मार-पीट के अभियोग में पुलिस द्वारा इनको गिरफ्तार करवा दिया। कल ये जमानत पर छूटे हैं। अखबारों के लिये यह घटना खास खबर है।

प्रभाने मन्द मुस्कान के साथ कहा—"वास्तव में ये आदर्श पुरुष मालूम होते हैं। जैसी इनकी सुन्दर भावना है, वैसा ही इनका सुन्दर कार्य भी है।"

४

दौलतराम और श्यामा का दाम्पत्यजीवन सुख पूर्वक नहीं व्यतीत हो सका। एक वृद्ध और युवती में कलह होना अनिवार्य था। श्यामा अपने जीवन को नीरस पा रही थी। वह अपने भाग्य पर रोती थी और अपने पिता की बुद्धि पर तरस खाती थी। जूही और चमेली की आँखों में वह कांटा के समान चुभती रहती थी। उनके कर्कश शब्दों से उसका कलेजा कांप उठता था। उनके भयानक चेहरे से मालूम होता था कि देवकन्या को निगलने के लिये चुड़ैलें मुंह बाये खड़ी हैं।

श्यामा दौलत राम को काल के समान देखती थी। जब वे उसके समीप आते, तब इस भावना से वह उनकी ओर देखती, जैसे कोई शिकार शिकारी को भय की दृष्टि से देखता है। इसके बाद वह भाग चलती। यह घटना नित्य घटती थी। दौलत राम के लिये उसका यह व्यवहार असह्य हो उठा था। एक दिन दौलतराम को देखते ही वह ज्योंही भागने लगी त्योंही पीछे से उन्होंने उसकी वेणी पकड़ कर खींच ली और पूछा—"मुझे देखकर तुम क्यों भागती हो ?"

श्यामा ने कांपते हुए स्वर में कहा—"आपको देखकर मुझे लज्जा आती है।"

दौलत राम—"इसमें लज्जा की क्या बात है ?"

इस प्रश्न का उत्तर देते समय श्यामा की आंखों में आंसू छलक आये। वह कुछ न बोल सकी।

दौलतरामका सारा शरीर क्रोध से कांपने लगा। सामने दीवार से बेत उतारकर उन्होंने उसकी खाल उतार दी। पुष्प के समान उसके कोमल अंगों से रक्त की धारा प्रवाहित होने लगी। वह मुर्छा खा धरती पर आ रही। दास-दासियों के प्रयत्न करने से वह होश में आई, परन्तु मार इतनी पड़ी थी कि स्वस्थ होने में उसे महीनों लग गये। अपनी भूल पर पीछे दौलतराम को पश्चाताप हुआ, पर हाथ से तीर छूट जाने पर किया ही क्या जा सकता था।

श्यामा का मन बहलाने के ख्याल से दौलत राम उसे कलकत्ता ले गये। उस की दृष्टि में शहरी दुनिया ग्रामों से भिन्न थी। रहन-सहन, बात-चीत, चाल-चलन और हर एक विषय में पूरा अन्तर था। ग्रामीण जनता में जो भोलापन था, वह इस विशाल नगरके नागरिकों में नहीं था। उसने अपने मन में कहा—"नगर में तो प्राकृतिक सौन्दर्य का नामोनिशान नहीं है। यहां शुद्ध वायु और प्रकाश का तो नाम भी नहीं है। यहां नालियों की दुर्गन्ध से वायुमण्डल विषाक्त रहता है, जिसका प्रभाव लोगों के स्वास्थ्य पर बुरी तरह से पड़ता है। नागरिकों को आडम्बर अधिक प्रिय होता है, और वे जो कुछ करते हैं, संस्कृति और सभ्यताके नामपर करते हैं, और वह नयी रोशनी

के आवरण में छिप जाता है। आर्थिक दृष्टिकोण से नगर की स्थिति ग्रामों से अच्छी रहती है। ग्रामीण दीन-हीन जीवन व्यतीत करते हैं। उनके परिश्रम पर सेठ साहुकार और महाजन मौज का जीवन व्यतीत करते हैं। ग्रामों से शहरों में दूध, दही, घी, फल, फूल, खाद्यान्न पहुंचते रहते हैं।

"फिर भी ग्रामीण इनके लिये तरसते हैं। ग्रामीण जनता 'राम राम' कहकर समय काटती है, और शहर वाले 'हाय धन, हाय धन' कहकर जिन्दगी बिताते हैं। पैसे की करामात ने संसार को खिन्न कर रखा है।"

श्यामा का संसार इन दोनों से भिन्न था। वह न तो शहर में थी और न गांव में, बल्कि इन दोनों से दूर क्लेश और विपत्ति के बीच उसकी नीरस दुनियां बसी हुई थी। इसी में उसका सबेरा होता था और शाम होती थी। दुःख से जब वह घबड़ा उठती थी तब भाग्य के अलावा सांत्वना देने वाला उसे कोई दूसरा नजर नहीं आता था।

५

ज्योंही दयाशंकर के दरवाजे पर मोटर लगी, त्योंही लोगों की एक बड़ी भीड़ वहां एकत्रित हो गई। आगन्तुक को उनमें से कोई नहीं पहचान रहा था। पर सबों की धारणा थी कि अवश्य वह कोई बड़ा आदमी होगा। उनकी यह धारणा निर्मूल नहीं थी। जयशंकर बाबू कोई साधारण आदमी नहीं थे। वकालतसे उनकी आय अच्छी थी। इसी से उन्होंने काफी सम्पत्ति का उपार्जन किया था।

दयाशंकर उस समय कहीं बाहर गया हुआ था। खबर मिलते ही वह अपने दरवाजे पर वापस आया। जयशंकर बाबू को देखतेही उसने नत मस्तक होकर प्रणाम किया और मुस्कराते हुए पूछा—"गरीबकी कुटिया पर आपका कैसे आगमन हुआ? आपका स्वागत करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है।"

जयशंकर बाबूने उत्तर दिया—"आपकी गरीबीमें मैं भी शामिल होना चाहता हूं और आशा करता हूं कि आप भी मुझे सम्मिलित होने की स्वीकृति देंगे।"

दयाशंकरने विनय पूर्वक कहा—"जो आज्ञा, मैं सेवा करने को तैयार हूं।"

जयशंकर बाबूने कहा—आप प्रभा को जानते हैं ? आपने तो उसे देखा है।"

दयाशंकरने उत्तर दिया—"हां जानता तो हूं, लेकिन कोई विशेष परिचय नहीं है।"

उसके सम्बन्धमें जयशंकर बाबू पुनः कहने लगे—"प्रभा मेरी एक मात्र सन्तान है। देखनेमें जैसी वह सुन्दर है, वैसा ही उसका हृदय भी निर्मल है। गत वर्ष उसने आई० ए० की परीक्षा पास की है। अंग्रेजी शिक्षा मिलने पर भी पाश्चात्य सभ्यता की वह पुजारिन नहीं है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर उसे नाज है और मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्राचीन नारियोंके पद-चिन्हों पर चलकर कुल-ललना बनने में वह अपना गौरव समझती है। घरेलू कार्यों में उसकी बड़ी दिलचस्पी रहती है। उसके लिये योग्य वरकी मैंने तलाश की, पर मैं असफल रहा। उसकी शादी मेरे लिये एक समस्या बन गई है। दिन-रात मैं इसी उलझनमें उलझा रहता हूं। माता-पिताका धर्म है कि एक सुशिक्षित और सुयोग्य वरके साथ लड़की का विवाह कर दें। मैं अपने इस कर्त्तव्य का पालन करना चाहता हूं। आप तो विजयकान्त को जानते होंगे ?" दयाशंकरने कहा—"हां अच्छी तरह मैं जानता हूं। वह एक बड़े जमीन्दार का पुत्र है, और बी० ए० तक हम दोनोंने एक साथ शिक्षा पायी है। अगर उसके साथ आप प्रभा का विवाह करदें तो अच्छा होगा।"

जयशंकर बाबूने कहा—नहीं, नहीं, आपका ख्याल गलत

है। मेरी आंखोंमें जितना चरित्रका मूल्य है, उतना धनका नहीं। विजयकान्तके साथ मैं अपनी पुत्री का विवाह कदापि नहीं कर सकता हूं।"

दयाशंकरने पूछा—"तब किसके साथ?"

जयशंकर बाबूने उत्तर दिया "आपको प्रभाका पाणिग्रहण करना पड़ेगा।"

दयाशंकर बड़े गौरसे उनकी ओर देखने लगा, फिर कुछ देर बाद अपना मौनव्रत भंग करते हुए कहा—"यह कभी सम्भव हो सकता है? प्रभाका जन्म लक्ष्मी की गोदमें हुआ है और उसका लालन-पालन ऐशोआराम के बीच हुआ है। ठीक इसके विपरीत मेरा जन्म दरिद्रताके अंकमें हुआ है, और विघ्न-बाधाओंसे लड़ते हुये इस जीवन का प्रत्येक क्षण व्यतीत हो रहा है। भला संघर्षके जीवनमें और आमोद-प्रमोदके जीवनमें कभी मेल खा सकता है? क्या एक निर्धन किसानके घरमें एक जमीन्दार की पुत्री का निर्वाह हो सकता है? अगर प्रभा का मेरे साथ विवाह करने का आपने निर्णय कर लिया है, तो भयंकर भूल की है। इस विवाह से हम दोनों का जीवन दुखमय हो जायेगा। कृपया आप मुझे क्षमा करें और उसका विवाह किसी दूसरेसे करें?"

जयशंकर बाबूने दयाशंकर का विरोध करते हुये कहा—"यहीं पर आप भूल कर रहे हैं। प्रभा को आप दूसरी लड़की मत समझिये। वह देव कन्याके तुल्य है। जिस स्थितिमें आप

रहेंगे, उसी स्थितिमें वह सानन्द रहेगी। मैं धन को उतना महत्व नहीं देता हूं, जितना कि आप। मेरा विश्वास है कि प्रभा को लेकर आपके जीवन की प्रगतिमें कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी।"

६

विजयकान्त को रेस खेलने का बहुत बड़ा व्यसन था। प्रति वर्ष वह इसमें कुछ न कुछ अवश्य खो देता था। कृष्णकान्त के मना करने पर भी वह इस साल कलकत्ता पहुंचा और घोड़ों के पीछे दाव लगाना आरम्भ किया। कभी जीत और कभी हार, यह तो स्वाभाविक ही है। हार की चिन्ता विजयकान्त को नहीं थी। वह तो रुपये व्यय करना जानता था।

संध्याको, जिस समय घुड़दौड़ आरम्भ हुई, रेस-मैदान में लोगों की जबर्दस्त भीड़ एकत्रित हुई। दाव लगाने वालों की संख्या तो गिनी जा सकती थी, परन्तु दर्शकों की संख्या गिनना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। दौलतराम भी उस दिन सपत्नीक रेस-मैदानमें पहुंच कर रेस देख रहे थे। अचानक वहीं पर उनकी विजयकान्त से भेंट हो गयी। दोनों सानन्द एक दूसरे से मिले। दौलतराम का पहला उलाहना यह हुआ कि उनकी शादीमें वह क्यों न आया ?

विजयकान्तने उत्तर दिया, "आपको तो मालूम है कि उस समय जिला बोर्डका निर्वाचन हो रहा था। पिताजी भी उसके लिये खड़े थे और उनके विरुद्धमें थे प्रसिद्ध वकील जयशंकर बाबू। लगभग पन्द्रह-बीस हजार रुपये व्यय भी हो गये और पिता जी की जीत भी नहीं हुई।"

इतने में ही घुड़दौड़ खत्म हो गयी। दौलतरामने अपनी गाड़ी पर विजयकान्त को भी बैठा लिया। शहरके कोलाहल को पार करती हुई गाड़ी दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ी। बात-चीत पुनः आरम्भ हुई। दौलतरामने कहा—"मतदाता तो तुम्हारी प्रजा थे, फिर चाचा साहब की हार कैसे हुई?"

विजयकान्तने कहा—"भाई जी, आजकी प्रजा स्वामी भक्त नहीं है। आज वह अपनी परम्परा को भूल गयी है। प्रजा को विद्रोह करनेके लिये उत्तेजित किया जाता है। जब ब्रिटिश सरकारको लोग भगाने पर लगे हुये हैं तब हमारी और आप की कौन गिनती? मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि अंग्रेजों के चले जाने पर जमीन्दार राहके भिखारी बन जायेंगे। मैं दावेके साथ...।" इतने में ड्राइवरने कहा—"बाबू लेक रोड तो आ गये।"

दौलतरामने कहा—"आगे बढ़कर चौराहे की दांयी ओर मुड़ो।"

एक बगीचामें जाकर गाड़ी लगी। चारों ओर फल-फूलके वृक्ष। पुष्पों की सुगन्धसे वायुमण्डल सुगन्धमय हो रहा था। बिजलीके जलते हुये बल्ब बाग की शोभा और भी बढ़ा रहे थे। विजयकान्तने कहा—"आप तो बहुत ही अच्छी जगह पर रह रहे हैं। मैं तो शैतानोंके बीच रह रहा हूं। जहां शन्ति नाम की कोई चीज ही नहीं।"

दौलतरामने कहा—"तुम युवक ठहरे। तुमको तो वैसी

जगहमें रहना ही चाहिये। यह स्थान तो साधु, तपस्वी और योगियोंके लिये है।

विजयकान्तने हंसते हुये कहा—"हां आपकी साधनाके लिये यहां साधन भी तो मौजूद है।"

दौलतरामने सर हिलाते हुये कहा—"शायद तुम्हारा संकेत अपनी भाभी की और है?"

विजयकान्तने कहा—"आप जो समझें।" श्यामा मुस्कुराने लगी। दौलतरामने कहा—"इस विवाहमें भी तो दयाशंकरने बाधा पहुंचाने की कोई कम कोशिश नहीं की थी, पर पूर्वजोंके पुण्य प्रतापसे मेरे मुख की लाली रह गयी।"

विजयकान्तने पूछा—"दयाशंकरने क्यों आपत्ति की?'

दौलतरामने कहा—"दयाशंकर अपने को समाज-सुधारक कहता है। उसे यह पसन्द नहीं था कि मैं शादी करूं। इसके लिये उसने सत्याग्रह भी आरम्भ कर दिया था। कुछ आरोप लगाकर तो मैंने उसे गिरफ्तार करवा दिया था, किन्तु जयशंकर बाबू की कृपासे वह मुक्त हो गया। मुकदमामें मेरी हार हुई।"

विजयकान्तने कहा—"दयाशंकर का यही काम है। समाज-सुधारके नाम पर उसने क्या नहीं किया? कितने छात्रों को बहकाकर अनाथ महिलाओं और यहां तक कि वेश्याओंके साथ भी उनकी शादी करवा दी। किन्तु; स्वयं उसने वकील साहब की पुत्री प्रभा देवीसे विवाह किया है।"

दौलतरामने आश्चर्य चकित होकर पूछा—"कौन वकील साहब ?"

विजयकान्तने उत्तर दिया—वही जयशंकर बाबू, जिनकी आपने अभी चर्चा की है।"

दौलतरामने कहा—"विधि का विधान भी बहुत विचित्र है। जयशंकर बाबू की पुत्री का विवाह दयाशंकर ऐसे दरिद्र व्यक्तिसे हो ?"

विजयकान्तने कहा—"भाई साहब ! माना कि उसके पास कुछ नहीं है, परन्तु बुद्धि तो है। वह बहुत धूर्त और चतुर व्यक्ति हैं। अपना पाशा फेंकने में वह बहुत ही कुशल है। आपने उसपर मुकदमा नहीं चलाया, बल्कि उसके भाग्य का दरवाजा खोल दिया। मुकदमाके सिलसिले में ही उसे प्रभाके सम्पर्कमें आने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उसी समय उसके साथ प्रेम का सौदा भी पट गया होगा, जिसके परिणाम स्वरूप यह विवाह हुआ है। आखिर वकील साहब करते ही क्या ? अपनी इज्जतआबरू बचानेके लिये उन्होंने दयाशंकरके हाथमें अपनी पुत्री को सौंप दिया।"

दौलतरामने कहा—"क्या उन्हें कोई दूसरा वर न मिला ? तुम्हारे साथ क्यों न उसकी शादी की ?"

विजयकान्त ने उत्तर दिया—उनकी पत्नी चम्पा देवी प्रभा की शादी मुझसे करना चाहती थीं, परन्तु वकील साहब को यह पसन्द नहीं था। वे एक आदर्श पुरुष की खोज कर रहे

थे। मेरा भी विवाह उन्हींके गांव प्रेम नगरमें एक अच्छे जमीन्दार की पुत्री कुसुमके साथ हुआ है।"

दौलतरामने कहा—"हां, इसकी सूचना मुझे मिली थी। परन्तु; दयाशंकरके विवाह की नहीं मिली थी। मुझे अफशोस होता है वकील साहब की बुद्धि पर। उस रंकके अंकमें प्रभा को समर्पित कर उन्होंने उसके प्रति बहुत बड़ा अन्याय किया है। भला दयाशंकर के घर में बिलास की सामग्रियां उसे कहां मिलेंगी? उसे चाहिये जार्जेट की साड़ियां, स्नो पाउडर, साबुन, सेंट और हवाखोरी के लिये मोटर। इस विवाह का परिणाम यही निकलेगा कि एक दिन प्रभा दयाशंकर से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेगी और किसी अन्य पुरुप की पत्नी बन जायेगी।"

विजयकांत ने उनका समर्थन करते हुए कहा—"आखिर ऐसे विवाह का तो परिणाम ऐसा ही निकलता है।"

७

श्यामा और दौलतराम दोनों अपने-अपने भाग्य पर रोते थे। श्यामा इसलिये रोती थी कि उसकी कल्पना का महल ढह गया था और दौलतराम इसलिये रोते थे कि श्यामा को पाकर उनका जीवन सुखमय नहीं था। आश्चर्य का विषय तो यह था कि दौलतराम उसे भूलते नहीं थे और सदा उसकी मनोरम मूर्ति अपनी आंखों के सामने रखना चाहते थे। ठीक इसके विपरीत श्यामा उन्हें एक दानव समझती थी और उनको देखते ही उसे भय मालूम होता था।

'आखिर यह कब तक चलेगा ?' दौलतराम इसका स्पष्टीकरण चाहते थे। उन्होंने श्यामा से निर्भीक होकर उत्तर देने को कहा। हृदय दृढ़ कर श्यामा भी कहने लगी—"आप को मैं अपने हृदय से चाहती हूं, परन्तु दूसरे रूप में। इसका प्रधान कारण हम दोनों की अवस्था का अन्तर है। आप को देखकर मुझे अपने पितामह का स्मरण हो आता है। फिर जहां यह भावना उठ खड़ी होती है, वहां दाम्पत्य प्रेम का कौन सा प्रश्न ? समाज के ढोंगी लोग इसके लिये मेरा ही दोष देंगे, पर मैं बिल्कुल निर्दोष हूं। अपराधी तो आप और मेरे पिता जी हैं, जिनकी मर्जी से मेरे भविष्यत का निर्माण हुआ है। मेरे स्वप्न का संसार भंग हो चुका है और मैं अपने को दानवी

पंजे में पा रही हूं। यह दुःख अकेले मैं ही भोगती हूं, यह बात नहीं है, बल्कि मेरे समान हजारों नारियां समाज के अन्याय का शिकार हो रही हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि देशमें भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और वेश्याओं की संख्या में वृद्धि हो रही है। अगर हम इस प्रकार के विवाह का विरोध करती हैं, तो लोग हमें कलयुगी नारी कहते हैं। पर ; उनका ध्यान द्वापर, त्रेता, और सत्ययुग की ओर नहीं जाता है, जबकि स्त्री को अपना पति चुनने का स्वयं अधिकार था। विवाह शादी तो कोई रश्म रिवाज की चीज नहीं है। यह तो नर-नारी को एक बन्धन में बांध कर जीवन के एक विस्तृत क्षेत्र में छोड़ देता है, जहां दोनों कदम से कदम मिलाकर बढ़ते हैं। परन्तु, यह तभी सम्भव है, जबकि वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने वाले पुरुष और स्त्री की अवस्था में प्राकृतिक नियम के अनुसार कोई विशेष अन्तर न हो और साथ ही साथ उनकी रहन सहन, शिक्षा दीक्षा में समानता हो। अगर इसके विपरीत वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होता है तो वह विवाह कलह का प्रधान कारण बन जाता है, जिससे स्त्री और पुरुष में कोई भी सुख और शांति का जीवन नहीं व्यतीत कर पाता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आप और मैं हूं। उस दिन आप और विजयकान्त जयशंकर बाबू का मजाक उड़ा रहे थे, पर वे मजाक के योग्य व्यक्ति नहीं हैं। उन्होंने पूरी दूरदर्शिता से काम लिया है। दयाशंकर के साथ प्रभा का

जीवन आनन्दमय बीतेगा। मैं तो यह कहती हूं कि अगर गरीब से गरीब एक सच्चरित्र युवक के साथ मेरी शादी हुई होती, तो मैं अपने भाग्य की सराहना करती। मेरे लिये आप के हाथी, घोड़े, ऐश्वर्य और वैभव कोई काम के नहीं हैं। फिर भी; आप यह न समझें कि मैं वासना की पुजारिन हूं। मैंने अबलाओं की एक समस्या आपके सामने रखी है।"

श्यामा की बातों पर दौलतराम का पाषाण हृदय द्रवित हो उठा। उनकी सोयी हुई आत्मा जाग उठी। अब उन्हें ज्ञान हुआ कि श्यामाके साथ विवाह कर उन्होंने कितनी बड़ी भूल की है और उसके प्रति कितना बड़ा अन्याय किया है। उन्होंने यह देखा कि उस पापका प्रायश्चित अब उनके हाथमें नहीं है। बहुत खिन्न होकर वह सोचने लगे—"मेरी पहली शादी किशोरावस्थामें हुई थी, जिसका मुझे स्मरण भी नहीं है। जब मैं युवक हुआ तो अपनी काम-पिपासा की शान्तिके लिये दूसरा विवाह किया, पर वह बुझने को नहीं थी। तृष्णा की शक्ति बढ़ती गयी और मैं अन्धा होता गया। अन्धे को राह का क्या पता? भटकते हुए इस पथिकने अपने जीवन की सन्ध्या-बेला में कुछ ऐसी भूलेंकी हैं, जिनके लिये इसको आजीवन पश्चाताप करना होगा और मृत्युके उपरान्त भी इसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। दयाशंकरने मुझ अज्ञानी यात्री को सही मार्ग पर लाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु मैंने ध्यान नहीं दिया और उलटे उसी पर आक्रमण कर दिया। आखिरी समय

में तो सबको ज्ञान होता है। वही दशा मेरी भी हो रही है। कामान्ध होना वास्तवमें अपने को वासनाके अग्निकुण्डमें स्वाहा कर देना होता है। मनुष्य की उसी हालतमें विजय हो सकती है; जबकि वह अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ले। ये मनुष्य की भयानक शत्रु हैं। इनमें अगर एक भी किसी विषय की ओर आकर्षित होती है, तो दूसरों को भी साथ कर लेती है। उस हालतमें मनको विचलित होनेमें देर नहीं लगती है। मनको परास्त होते ही मनुष्य पतन की ओर पैर बढ़ाता है।"

श्यामा बड़े गौरके साथ उनकी ओर देख रही थी। वे गम्भीर मुद्रामें कुछ सोच रहे थे। श्यामा पर नजर जाते ही उनकी आंखोंसे दो बून्द आंसू गिर पड़े। उन्होंने बहुत ही कातर स्वरमें श्यामा को सम्बोधित करते हुये कहा—"वास्तवमें मैंने केवल तुम्हारे प्रति ही नहीं, बल्कि मानवताके प्रति भी बहुत बड़ा अन्याय किया है। मुझे क्षमा करो।"

श्यामा मूर्तिके समान सारी बातें सुनती रही।

८

उसका नाम गोविन्द था, पर उसका काम शैतान का होता था। उच्च कुलमें जन्म लेने पर भी वह दुर्गुणों और दुर्व्यसनोंमें फंसा रहता था। उसका बचपन बम्बई ऐसे शहरमें बीता, जहां उसने जेब काटने, चोरी करने आदि विद्याएं सीखीं। जब वह जवान हुआ, तब समाजके लिये बहुत ही भयानक प्रमाणित हुआ। उसके पड़ोस का कोई भी ऐसा गांव नहीं था, जिसमें उसने चोरी नहीं की या डाका नहीं डाला। चलती ट्रेनसे यात्रियों का सामान लेकर कूद जाना उसके लिये बिल्कुल आसान था। हत्या करने और महिलाओंके सतीत्व लूटनेमें उसे थोड़ा भी संकोच नहीं होता था।

चोरी, डकैती और ठगीसे उसकी आय अच्छी थी, पर उससे वह अपनी सम्पत्ति नहीं बढ़ा सका। लूट का धन लूटमें ही चला जाता था। पुलिसके लेनेके बाद जो कुछ बचता था, उसमें उसके साथी हिस्सा बंटवाते थे।

जिस दिन अपने कार्यमें वह सफल होकर घर आता था, उस दिन उसके यहां बहुत बड़ा जलसा होता था। मद्य, मांस नाच रंग कई दिनों तक चलता रहता था। नशामें जब वह मस्त हो जाता तब बादशाहसे लेकर गांवके जमीन्दार तकको

गालियां दे जाता था और अपनी बहादुरी का उल्लेख करते हुए अतीत की घटनाओं का भी वर्णन कर जाता था।

उसके भयसे लोग आतंकित हो उठे। पुलिस अधिकारी कुछ ध्यान ही नहीं देते थे। इसपर अगर उसका साहस बढ़ता जाता था, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। जिलामजिस्ट्रेट को जब सारी स्थितिसे अवगत कराया गया तब उसने उचित कार्यवाही की। बहुत कठिनाईके साथ उसे गिरफ्तार किया गया। उसपर महीनों तक मुकदमा चलता रहा। अन्तमें उसे आजीवन कारावास की सजा दी गयी।

१

लगभग दो वर्षके बाद श्यामा कलकत्तासे कंचनपुर लौटी।

उसकी रहन-सहन पर शहर की कुछ छाप पड़ गयी थी। नगर की नारियोंके समान मुख पर पाउडर और स्नो लगाने, दिनमें दो तीन बार वस्त्र बदलने, वाग आदि की शैर करनेमें वह अभ्यस्त हो गयी थी। एक तो वह स्वयं सौन्दर्य की सजीव मूर्ति थी और दूसरे बाहरी सजावटने उसकी छटा को और भी मनोरम बना दिया, जिससे उसमें विद्युतके समान आकर्षण का समावेश हो गया। रूपके पुजारियोंने उसकी आराधना की, सौन्दर्यके लुटेरोंने उसे लूटने का प्रयत्न किया और हुस्नके शिकारियों ने जाल फेंके, पर सबके सब असफल रहे।

कलकत्ता से लौटने पर दौलतराम के जीवन में पूरा परिवर्तन दीख पड़ा। उन्होंने अफीम और संखिया खाना छोड़ दिया तथा सभी मादक द्रव्यों का परित्याग कर दिया। श्यामा सदा उनकी सेवा में प्रस्तुत रहती थी। नित्य वह फुलवारी में जाती, फूल लाती, माला तैयार करती और उनके साथ मंदिर में जाकर देवता की पूजा करती थी। दौलतराम मूर्ति के सामने खड़ा होकर अपनी भूल के लिये क्षमा मांगते, प्रार्थना करते और सबके लिये कल्याण की कामना करते थे। दीन-

दुखियों को दान देना, साधु, सन्त और ब्राह्मणों को भोजन देना उनका दैनिक कार्य-क्रम था। उन्होंने अपने कर्मचारियों को आदेश दे दिया कि रैयतों को सताकर मालगुजारी नहीं वसूल की जाय।

एक दिन उन्होंने दया शंकर को बुलवाया। उसके सामने उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की और उसके प्रति किये गये अन्याय के लिये पश्चाताप प्रकट किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा—"कामेश्वर के बहकावे में आकर मैंने तुम्हारे ऊपर मुकदमा किया, जिसके लिये मुझे हार्दिक दुःख है। अगर तुम्हारे कहने के अनुसार मैं शादी नहीं करता, तो आज मेरी अन्तरात्मा नहीं रोती।"

दयाशंकर ने कहा—"हाथ से तीर छूट जाने के बाद पश्चाताप करने से ही क्या होता है ?"

दयाशंकर की बातों से दौलतराम बहुत ही प्रभावित हुये। उसे आशीर्वाद देते हुए उसके प्रति उन्होंने शुभ कामना प्रकट की।

फिर श्यामा के लिये चिन्ता प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—"मेरी भूल का प्रायश्चित इस बेचारी को करना पड़ रहा है। मेरी मृत्यु समीप आ गयी है। इसका भविष्य मुझे अन्धकार-मय प्रतीत हो रहा है।"

१०

छः सात महीने तक दौलतराम रोग-शय्या पर पड़े रहे। सब प्रकार के उपचार हुये, पर रोग घटने के बदले बढ़ता ही गया। डाक्टर, वैद्य, हकीम और तांत्रिक सब उनके जीवन से निराश हो गये।

सूर्यास्त हो चुका था। तम का अधिकार प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा था। तारे लुक छिपकर पृथ्वी की ओर देख रहे थे। चारों ओर उदासी छायी हुई थी। दिशाएं रो रही थीं और नाना प्रकार के अपशकुन हो रहे थे। जूही, चमेली और श्यामा खिन्न होकर दौलतराम की खाट की बगल में बैठी हुई थीं।'

दौलतराम को मालूम हुआ कि दीपक के तेल के समान प्रतिक्षण उनकी आयु क्षीण हो रही है, जिससे उनकी जीवन-ज्योति मन्द पड़ती जा रही है। मृत्यु के समीप आने से मनुष्य अनुभव करता है कि उसके जीवन का कितना भाग परोपकार सेवा, ईश भजन, न्याय और अन्याय में वीता है? अपने स्वजन परिवार और घर की प्रत्येक वस्तु में उसकी माया लिपट जाती है। इस महा यात्रा के वाद पुनः इनसे मिलन नहीं होगा, सोचकर वह विकल हो उठता है। इस शरीर और जीव का जो सम्बन्ध माता के गर्भ से ही चला आता है, वह आज विच्छेद हो रहा है, सोचते ही वह रो पड़ता है। इस समय का

एक-एक क्षण उसे इतना बहुमूल्य मालूम होता है, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। वह चाहता है कि मृत्यु एक क्षण ठहर जाय जिससे वह अपने सगे सम्बन्धियों और मित्रों से मिल ले और संसार को एक नजर से देख तो ले, पर काल के सम्मुख उसकी सारी अभिलाषाएं विफल हो जाती हैं। माता, पिता, पुत्र, स्त्री, स्वामी, भाई, बन्धु के सामने ही उसकी आत्मा संसार से प्रस्थान कर जाती है। यही संसार है, जिससे हर एक मनुष्य को सबक लेना चाहिये।

दौलतराम की भी यही दशा हुई। वह चाहते थे कि एक घड़ी भी इस शरीर में प्राण ठहर जाय, जिससे अपने धन का वसीयत नामा तो वह लिख जांय, पर मृत्यु ने उन्हें ऐसा सुअवसर नहीं दिया और एक टिमटिमाते हुए दीपक के समान उनकी जीवन-ज्योति बुझ गयी।

कुछ क्षण पहले जहां शांति विराज रही थी, वहां अब नारियों के क्रन्दन और दास दासियों के विलाप से सारा वायुमण्डल अशान्त हो उठा। उस अर्द्ध रात्रि में भी सारी वस्ती के लोग वहां एकत्रित हो गये और मित्र-शत्रु सब एक स्वर से दौलतराम के गुणों की प्रशंसा करने लगे। अपने जीवन काल में जिनको उन्होंने सताया था, उन्होंने भी उनके लिये दो बून्द आंसू गिरा दिये। सब शोक प्रदर्शित कर रहे थे और प्रायः सबके मुख से यही निकलता था कि इस जीवन का कोई ठीक नहीं है। मृत्यु की गोद में राजा, रंक, निर्बल,

सबल, साधु, असाधु, पण्डित और मूर्ख एक दिन लेट जाते हैं। यही संसार का नियम है। यहां जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका विनाश निश्चित है। इस संसार में साथ के लोग स्वप्न में मिले हुए साथी के समान हैं, जो नींद भंग होते ही अदृश्य हो जाते हैं। इसलिये उनके मिलन और वियोग पर आनन्द और दुःख प्रकट करना मूर्खता है। आत्मा तो एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करती है। माया-मोह तो संसार का एक जाल है, इसी में मनुष्य जीवन भर भ्रमता रहता है। यहां किसका कौन है? सारा सम्बन्ध झूठा है।

अकस्मात उस दिन जयशंकर बाबू भी कंचनपुर पहुंचे हुये थे। दौलतराम की शव-यात्रामें उन्होंने भी भाग लिया। छोटे और बड़े गांवों को पार करती हुई तथा पगडण्डियोंसे होकर अर्थी श्मशानमें पहुंची। यहां आते ही सांसारिक माया नष्ट हो जाती है। काम, क्रोध, मोह और मदने कभी यहां आनेका साहस नहीं किया। अगर यह कहा जाय कि श्मशान पर वैराग्य का आधिपत्य रहता है, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

जिस समय चिता पर दौलतराम का मृत शरीर धू-धू कर जल रहा था, उस समय जयशंकर बाबू खिन्न होकर संसार की असारता पर सोच रहे थे। उनके सामने केवल एक यही लाश नहीं भस्म हो रही थी, बल्कि पन्द्रह-बीस चिताओंसे अग्नि की प्रज्वलित लपटें उठकर चारों ओर दुर्गन्ध फैला रही

थीं। छिन्न-भिन्न मृत शरीरों पर कौवों का बैठना और उनपर कुत्तों का लड़ना जयशंकर बाबूके कोमल हृदय पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सका। उन्होंने अपने मनमें सोचा कि एक दिन मेरे शरीर की भी तो यही गति होगी। जबतक इस शरीरमें प्राण है, तबतक सब अपने हैं, जिस दिन इस शरीरसे वियोग होगा उस दिन सब पराये हो जायेंगे। मेरे साथ न तो उपार्जन किया हुआ धन जायेगा और न धरती जायेगी। इतना हाय-हाय, कांय-कांय करने की क्या आवश्यकता? आत्मा की शान्तिमें ही शान्ति है, अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं है।

११

समाज वैधव्य को भयंकर पाप का परिणाम समझता है। यही कारण है कि सभी सुख-साधनोंसे वह विधवा को वञ्चित रखता है। वह चारों ओर ठोकरें खाती है और प्रायः सब उसे हीन नजरोंसे देखते हैं। हाड़-मांसके उस पुतले पर कड़ा नियन्त्रण रख जाता है। कठिन नियन्त्रणमें रहकर उसके जीवन का शेष भाग समाप्त होता है।

दौलतराम की मृत्युके पश्चात श्यामा पर भी समाज का यह विधान लागू हुआ। अब वह शृङ्गार नहीं कर सकती, माला नहीं पहन सकती, पान नहीं खा सकती, दर्पणमें मुख नहीं देख सकती, बालों को नहीं सँवार सकती आदि आदि। उसका जीवन तो पहले ही नीरस था और अब तो उसमें कोई सार ही नहीं रह गया था।

घर की स्थिति दिन प्रतिदिन बदतर होती गयी। जूही और चमेलीमें नित्य प्रधान बनने के लिये झगड़ा होता था। श्यामा एक दर्शक की भांति यह देखती थी। वह अपने मनमें कहती थी "आखिर परिवार तो हमहीं तीन तक सीमित है, किसी को बाल न बच्चा, फिर यह संघर्ष कैसा ?"

इस परिस्थितिमें नौकर-चाकर सब अनुचित ढंगसे अपने लिये धन संग्रहमें बाजी लगा रहे थे। कामेश्वर दौलतरामके जीवन

कालमें ही उनका मैनेजर बन गया था। वह अभी तक अपने उसी पद पर आ रहा था, पर दौलतरामके मरते ही उसके अधिकारमें वृद्धि हो गयी। एक प्रकारसे वह उस परिवार का स्वामी बन गया। रैयतों को सताकर पैसा उपार्जन करना उसका ध्येय हो गया था। डेढ़ दो वर्षमें ही मिट्टी की दीवार की जगह ईंटों का उसका महल बन कर तैयार हो गया। दरवाजे पर दो घोड़े और चार बैल बंध गये। उसकी उन्नति देख कर पड़ोसी कहने लगे कि दौतलरामके घर की लक्ष्मी अब कामेश्वरके घरमें आ रही है। इसका समय बदल गया।

कामेश्वर दौलतराम की सम्पत्ति लूटकर धनवान तो होना ही चाहता था और साथ ही साथ श्यामा का प्रेम भी प्राप्त करने का प्रयत्न करता था। वह उसके रूप-लावण्य पर सदा मोहित रहा। जब वह शहर जाता तो श्यामा को प्रसन्न करने के लिये सुन्दर-सुन्दर उपहार उसके लिये लाता था। पर; श्यामा उसे अस्वीकृत कर कहती—"अब ये सामान मेरे प्रयोजन के नहीं हैं। मेरे भाग्यने मुझसे इन्हें छीन लिया है।" इसके बाद उसकी आंखोंसे दो बून्द आंसू टपक पड़ते और वह वहां से खिन्न होकर चल देती। इसपर कामेश्वर हताश हो जाता।

ग्रीष्म ऋतु थी और था दोपहर का समय। उस समय प्रायः सभी लोग सोये हुये थे। श्यामा भी घरके एक कोनेमें पड़ी हुई खर्राटा खींच रही थी। कामेश्वरने दबे पांव उस घरमें प्रवेश

किया। श्यामा का आंचल खाटसे गिरकर धरती को चूम रहा था और उसकी काली वेणी नागिनके समान तकियासे नीचे की ओर लटक रही थी। उसके उमड़े हुये वक्षस्थल और सुडौल शरीरमें पतली कटिसे विशेष आकर्षण उत्पन्न हो रहा था। गुलाबके फूल पर ओस-कणके समान उसके सुन्दर मुखड़े पर स्वेद की बून्दे शोभा पा रही थीं। कामेश्वर इस अलौकिक रूप को देखकर उतावला हो उठा। वह उसकी ओर झुका और अपना हाथ ज्योंही बढ़ाया त्योंही उसकी नींद भंग हो गयी। वह चौंककर चिल्ला उठी। कामेश्वर भाग चला। जूही और चमेली दौड़कर वहां पहुंची। श्यामा रो रही थी।

चमेलीने पूछा—"क्या हुआ है ?"

आंखें पोछती श्यामाने कहा—"मैं नीदमें पड़ी थी। कामेश्वरने मेरे घरमें प्रवेश किया और""। इसके बाद वह बोल न सकी

जूही अपने ओठ पर अंगुली रखकर कहने लगी—"हाय दइया अब चुपके-चुपके घरमें यह तमाशा होने लगा। अब न इज्जत रहेगी।"

कामेश्वर को बुलवाया गया। चमेलीने उससे पूछा—"क्यों जी अब तुम्हारी शैतानी यहां तक बढ़ गयी ?"

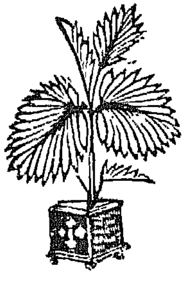
कामेश्वरने बड़ी दृढ़ताके साथ अपनी सफाई देते हुये कहा—"मैं आपका नमक खाता हूं। सत्य पर पर्दा डालना मेरे धर्मके विरुद्ध की बात होगी। आवश्यक कागजात लेकर

मैं आपके यहां जा रहा था। इसी बीच इसकी नजर मुझपर पड़ी। इसने संकेतसे मुझे अपने कमरे में बुलाया और मुस्कुरा-कर प्रेम की बातें करने लगी। इसका विचार सुनकर मेरा सारा शरीर कांप उठा। आपकी इज्जत और मेरी इज्जत बांटी हुई नहीं है। आपके कुल को कलंकित करना स्वयं अपने मुखमें कालिख लगाना है। मैं अपने धर्म को साक्षी देकर कहता हूं कि मैंने अपनी ओरसे किसी प्रकार का प्रस्ताव इसके सामने नहीं रखा। अगर आपको मुझपर सन्देह होता है, तो मैं आपकी सेवा करने में असमर्थ हूं।"

कामेश्वर की बातें सुनकर जूही क्रोधसे कांप उठी। अपनी छाती पीटती हुई वह कहने लगी—"श्यामा हमारे कुलमें दाग लगाये विना नहीं रहेगी। देखने में यह कैसी सुन्दरी है! पर इसका हृदय कितना काला है। यह अपना धर्म देना चाहती है और दूसरे का धर्म लेना चाहती है। वास्तवमें स्त्री जातिके हृदय का पता लगाना कठिन है।"

श्यामा की आंखोंसे आंसू की बूंदों की झड़ी लग गयी। अपने ऊपर लगाये गये आरापों का वह विरोध न कर सकी। इससे चमेली को भी उसके प्रति अविश्वास हुआ। वह दांत पीसती हुई कहने लगी—"इस कुलटाने हमारे कुल का सर्वनाश कर दिया। भालके सिन्दूर मिट जाने पर भी यह प्रेम-क्रीड़ा करना चाहती है। जब देखो तो ऐनक और कंघी। भला एक विधवा को शृङ्गारसे क्या प्रयोजन, इसका आशय तो स्पष्ट

है कि यह अपने मोहक रूप पर पुरुषों को आकर्षित करना चाहती है। अगर यह कामाग्निसे जल रही है, तो बाजार की राह क्यों न पकड़ती है ? इन्हीं व्यभिचारीणियोंसे तो बाजार बसा हुआ है। गुप्त रूपसे घरमें मैं यह पाप पसन्द नहीं कर सकती हूं। उस जन्ममें इसने जो कुछ किया उसका फल तो इस जन्ममें यह पा रही है और इस जन्ममें जो करेगी उसका फल कब पावेगी ? इसके पापका परिणाम हम लोगों को भी भोगना पड़ा है। जबसे इसने हमारे घरमें पैर दिया, तबसे हमारी हानि ही हो रही है। इस की शादीके साल हाथी मरा, घोड़ा मरा और हमारा एक गांव भी बिक गया। अन्तमें तो सर्वनाश ही हुआ। अब क्या होगा ? अब तो इज्जत आबरू बचना कठिन हो गया है।"



१२

जयशंकर बाबूने वकालत छोड़ दी। एक असहयोगी की भांति उन्होंने भी अपनी बिलायती पोशाकें जला दीं और संत फकीर की भांति काषाय वस्त्र धारण किया। इसके बाद उनके यहां कभी भी अफसरों को पार्टी देने की बात नहीं सुनी गयी और न कभी नाच रंग देखा गया। उस दरवाजे पर जहां रोज उत्सव और वेश्याओंके नृत्य होते थे वहां अब साधु संन्यासियोंके दल जुटने लगे।

जयशंकर बाबूने भारतके प्रायः सभी तीर्थ स्थानों की यात्रा की। कभी जंगल और कभी पहाड़ोंमें रहने की उनकी इच्छा होती थी। मायाके जाल को फाड़ते हुये उनका ज्ञान वैराग्य की ओर इस प्रकार दौड़ रहा था, जिस प्रकार बादलके पर्दे को फाड़कर सूर्य की किरणें पृथ्वी की ओर दौड़ती हैं। परन्तु; मोह उनके ज्ञानके प्रकाश को लक्षित स्थान पर पहुंचने में उसी प्रकार बाधक हो रहा था, जिस प्रकार पर्वत का शिखर सूर्य की रश्मियों को दूसरी ओर जाने में बाधक होता है। कभी-कभी भोग-विलास की स्मृतियां उनके हृदयमें इस प्रकार उथल-पुथल मचा देती थीं, जिस प्रकार शान्त महासागर भीषण तूफानसे कांप उठता है। माया और वैराग्यके बीच उनके मनकी ठीक वही स्थिति थी, जो आकाश और धरतीके

बीच कटे हुये पतंग की होती है। कभी हृदयमें भावना उठती थी कि यह संसार अनित्य है, शरीर नाशवान है, फिर ऐश्वर्य वैभव का कौन-सा मूल्य ? पर; तुरन्त ही वह भावना बदल जाती थी और यह विचार उत्पन्न होता था कि मृत्युके बाद क्या होता है, कौन जानता है ? इसलिये सांसारिक सुख काल्पनिक स्वर्गके सुख और शान्तिसे कहीं अधिक मूल्यवान है। मृगतृष्णाके पीछे भ्रमण करना मूर्खता होगी।

परन्तु इस स्थितिमें भी वह प्रलोभनके फंदे को फाड़कर पिंजड़ेके तोतेके समान भागने को तैयार थे। अज्ञानता का बादल फटता हुआ नजर आ रहा था। उनके मनमें एकाएक विचार पैदा हुआ कि अन्त समयमें जब राजा-रंक सब हाथ पसारे जायेंगे, तो धरती की धूलिके लिये कौन-सी ममता ! यह संसार माया का बाजार है, जिसके कण-कण में प्रलोभन भरा हुआ है। जिसने इसकी ओर देखा उसका इससे निकलना कठिन हो जाता है। माया ठगिनी कभी उसे दम लेनेका अवसर नहीं देती है और उसे परेशान करके मार डालती है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध, पुत्र-पौत्र की लालसा और धन-कुबेर होने की अभिलाषामें ही मनुष्य की जिन्दगी समाप्त हो जाती है।

अंतमें ज्ञानके प्रकाशमें अज्ञानताके तमका विनाश हुआ और माया-मोह का संसार उजड़ गया। जयशंकर बाबू एक वैरागी बनकर श्मशानमें बास करने लगे। यही उनकी तपोभूमि थी।

—※—

१३

उषाकाल का मन्द-मन्द शीतल पवन पुष्पोंके परागसे सौरभ लेकर संसारमें इस प्रकार लुटा रहा था, जिस प्रकार एक दानीपुरुष अपने पासके वैभव को कंगालोंके बीच वितरित कर देता है। रसिक चञ्चरीक प्रेममें पागल हो अलाप मारते हुये कलियोंके अधर-रस पान करने के लिये उपवनोंमें प्रवेश कर रहे थे। वह प्राकृतिक छटा दार्शनिकों, कवियों, लेखकों और किसी हालतमें व्याकुल हृदय को भी शान्ति प्रदान सकती थी, किन्तु श्यामा को शान्ति प्रदान करनेमें वह बिल्कुल असमर्थ रही। उस उद्यानमें जहाँ प्रकृति इठलाती हुई बड़े हाव-भावके साथ नृत्य कर रही थी, श्यामा अपनी चिन्ता-ज्वाला को अश्रुधारा से बुझाने का प्रयत्न कर रही थी।

उसके हृदय-विदारक रुदन को सुनकर प्रकृति भी रो उठी और उसका सारा रङ्ग फीका पड़ गया। जिनके कानोंमें यह करुण क्रन्दन पहुंचा, उनके हृदय दयासे द्रवित हो उठे।

जब क्रूर व्यक्ति उसके बिलाप पर पिघल सकते थे तब दयाशंकर ऐसे दयावान व्यक्ति का द्रवित होना तो स्वाभाविक ही था। फिर भी उसने अपने मनमें कहा—"संसारमें सर्वत्र रुदन और क्रन्दन ही है, कहांतक परेशानी उठायी जाय।"

फिर कर्त्तव्य की घोर गर्जना हुई—"दुखियोंके दुःख दूर करने में और पीड़ितों की सेवा करने में आत्मा को जो आनन्द होता है, वह कामनियोंके अधर-रस-पान करने में, रमणियोंके आलिंगनमें और सुहाग रात्रि को प्रियाके मधुर मिलनमें भी नहीं होता है।"

अन्तमें कर्त्तव्य की विजय हुई। दयाशंकर बिस्तरसे उठा। पर प्रभा बाधक बन गयी, उसने कहा—"सारा गांव आपका शत्रु बना हुआ है। कब कौन-सी घटना घटे, नहीं कहा जा सकता है। इसलिये अभी आपका बाहर जाना उचित नहीं होगा।"

दयाशंकरने उसे उत्तर देते हुये कहा—"भय का कोई कारण नहीं। गांव का मैंने क्या बिगाड़ा है? मुझे मालूम हो रहा है कि कोई पीड़ित आत्मा मेरी प्रतीक्षा कर रही है। कर्त्तव्य-पालन करने में तुम बाधक मत बनो।"

दयाशंकर चल पड़ा।

किसी की पद-ध्वनि सुनते ही श्यामा भयसे और भी अधैर्य होकर रोने लगी, पर दयाशंकर का परिचय पाते ही उसके हृदयमें कुछ धैर्य हुआ। फिर भी; रुदन बन्द नहीं हुआ। आंसू गिर रहे थे और वह कहती जाती थी—"समाज की नृशंसताने मुझे इस अवस्थामें लाकर छोड़ा है, जिसने मेरा सतीत्व लूटने का प्रयत्न किया, वही आज मुझे कुलटा बतला रहा है और उसीके कहने पर मैं घरसे निकाली गयी हूं।"

दयाशंकर उसके कहनेका आशय नहीं समझ सका। वह पूरी घटना सुनना चाहा।

श्यामाने कहा—"कई दिन पहले कामेश्वरने मेरे कमरेमें प्रवेश किया, पर सतीत्व नष्ट होनेके पहले ही मेरी निद्रा भंग हो गयी। जूही और चमेली को इसकी खबर मिली। उन्होंने जो यन्त्रणाएं मुझे दीं, उसकी तो बात ही अलग कीजिये।"

दयाशंकर बड़ी उत्सुकताके साथ उसके आगे की बातों की प्रतीक्षा कर रहा था। श्यामा कुछ रुककर कहने लगी—"अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के ध्येयसे स्वयं कामेश्वरने यह बात सारी बस्तीमें फैला दी, चारों ओर मेरी निन्दा होने लगी। कल संध्या को बिना बुलाये पंचों का दल मेरे घरपर पहुंचा। उनके बीच मैं बुलाई गयी और कामेश्वर भी। मेरी बातों पर किसीने विश्वास नहीं किया। कामेश्वर का बयान अक्षरशः सत्य माना गया। मैं भ्रष्टा घोषित की गयी और सम्पत्तिके अधिकारसे वञ्चित कर घरसे निकाल दी गयी। मेरे आभूषणादि छीन लिये गये।

"मैंने पंचोंसे क्षमा की मांग की, उनके पैर पकड़े, पर उसके बदले मैंने लात खायी। घरसे अर्द्ध नग्न अवस्थामें निकलने में मुझे शर्म आ रही थी। जूही और चमेलीसे केवल रात भरके लिये मैंने आश्रय की मांग की, पर उन्होंने एक क्षणके लिये भी मुझे शरण नहीं दी। अपनी कई सखी और सहेलियों की शरणमें भी मैं गयी, पर समाजके भयसे उन्होंने अलगसे ही मुझे

नमस्कार किया। कामेश्वर की पत्नी कामिनीसे भी मैंने भेंट की, पर मेरी सहायता करनेमें उसने भी असमर्थता दिखलायी। फिर इसके बाद मैं कहां जाती ? इसी बागमें आकर पड़ी हूं। आज कोई मेरा सहायक नजर नहीं आ रहा है।"

उसकी हृदय-विदारक कहानी सुनकर दयाशंकर की आत्मा रो उठी। बहुत देर तक सोच विचार करने के बाद उसने उसको अपने साथ चलने को कहा।

श्यामा ने कहा—"आप तो एक स्तम्भ रूपमें मुझे मिल गये हैं, किन्तु मुझे भय है कि मेरे कारण आप भी कहीं विपत्ति के दलदल में न फंस जांय ?"

दयाशंकर ने कहा—"मुझे इसका भय नहीं है। सेवा का मैंने जो व्रत लिया है, उसका तो अपने जीवन पर्यन्त पालन करना है। वह तो भंग होने को नहीं है।"

श्यामाके साथ दयाशंकर अपने घर पहुंचा। कानों कान गांव में इस समाचार के पहुंचने में देर न लगी। थोड़ा दिन चढ़ते चढ़ते उसके यहां नर-नारियों की विशाल भीड़ एकत्रित हो गयी। उसे देखने मात्र से किसी अनिष्ट घटना की सूचना मिल रही थी।

भीड़ ने एक स्वर में श्यामा को घर से निकालने की मांग की; पर दयाशंकर ने इसे अस्वीकार किया। इसपर उसके भाई से श्यामा को हटाने को कहा गया। उसने उत्तर दिया—"दयाशंकर के सामने मेरी बात नहीं चलती है। मैंने पहले

ही आपत्ति की थी, पर इसने कुछ ध्यान नहीं दिया। यह जब घर पर नहीं रहता है तब मैं शांति पूर्वक रहता हूं। रात ही यह बनारस से आया और आज यह काण्ड आरम्भ हो गया। आप लोगों की जो इच्छा हो वह कीजिये।"

कामेश्वर के संकेत पर सबके सब उसके आंगन में प्रवेश कर गये। एक आदमी श्यामा का केश पकड़कर खींचने लगा। दयाशङ्कर ने उसका विरोध किया। अब क्या था, दयाशंकर और श्यामा दोनों पर मार पड़ने लगी। पति को मुक्त करने के लिये प्रभा दौड़ पड़ी। परन्तु उसपर भी दो चार लाठियां पड़ीं।

घायल अवस्था में तीनों घर से बाहर निकाल दिये गये।

१४

कुछ उत्साही नवयुवकों और छात्रों की सहायता से दयाशंकर गांव के बाहर झोपड़ी बनाकर रहने लगा। पर कामेश्वर और उसके साथियों से यह भी नहीं देखा गया। अर्द्ध रात्रि में जिस समय जोरों की पच्छया हवा चल रही थी, उन्होंने झोपड़ी में आग लगा दी। बात-बात में वह जलकर खाक हो गयी। कुशल यही हुआ कि प्रभा और श्यामा के साथ दयाशंकर बाल-बाल बच गया। अब दयाशंकर के सामने कठिन समस्या उपस्थित हुई। उसके पास न तो खाने के लिये अन्न, न पहनने के लिये वस्त्र और न रहने के लिये घर था। उसपर भी उसके चरित्र के विरुद्ध आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। एक साथ सभी संकटों का सामना करना उसके लिये दुष्कर हो रहा था।

कुछ मित्रों ने पुनः मकान बनाने का प्रयत्न किया, पर दयाशंकर को यह स्वीकार नहीं हुआ। प्रभाने अपने मायके चलने की सलाह दी, किन्तु दयाशंकर को यह भी मंजूर नहीं था। उसने कहा कि विपत्ति के समय सम्बन्धियों की शरण में नहीं जाना चाहिये। इससे अपना अपमान होता है और कुल की निन्दा होती है, परन्तु आज तो हम लोगों को गांव छोड़कर अन्यत्र चलना ही है।"

जेठ मास की दोपहरी, सूर्य अपनी प्रचण्ड गर्मी से संसार को विकल कर रहा था। लू से शरीर जल रहा था। धूलि से आकाश भर रहा था। इस दृश्य को देखने से प्रतीत होता था मानो प्रकृति भी निष्ठुर व्यक्तियों के समान दया-शंकर को कष्ट पहुंचाने में तुली हुई है।

इन कठिनाइयों का सामना करते हुए संध्या समय दया-शङ्कर रेलवे स्टेशन पर पहुंचा। ट्रेन आने में काफी देर थी। थकावट तो दयाशङ्कर को भी मालूम हो रही थी, पर श्यामा और प्रभा की दशा अति दयनीय थी। यात्रा की परेशानियों के कारण उनके चन्द्र बदन कुम्हला गये थे। पास में वस्त्र नहीं रहने के कारण वे स्नान भी नहीं कर सकीं। तालाब में जाकर उन्होंने केवल हाथ-पांव धोये और वहीं पीपल के नीचे धरती पर सो गये। थकावट के कारण नींद आने में देर न लगी। ट्रेन कब आयी और कब चली गयी, उन्हें कोई पता नहीं। धीरे-धीरे रात भी बीत चली। प्रातःकाल जब पीपल पर पक्षी कलरव करने लगे; तब उनकी नींद टूटी। प्रभा ने कहा—"ऐसी गाढ़ी निद्रा आयी कि कुछ पता नहीं चला कि कैसे रात बीती।"

दयाशङ्कर ने कहा—"अच्छी तरह विश्राम तो हम लोगों ने किया। किसी स्थान का लक्ष्य तो नहीं है। कहीं चलना है। कल नहीं गये तो आज चलेंगे।"

प्रभा और दयाशङ्कर की दशा देखकर श्यामा को अति

दुःख हुआ। उसने अपने मनमें कहा—"आखिर मेरे ही लिये तो इनकी ऐसी दुर्दशा हुई है, कामेश्वर का भला नहीं होगा। उसने मेरा सर्वनाश किया।"

देखते ही देखते सूर्य की रश्मियां चारों ओर फैल गयीं। तालाब पर स्नानादि करने के लिये एकके बाद दूसरे व्यक्ति आते ही गये। दो युवतियोंके साथ एक युवक को देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। तीनों की अस्त-व्यस्त स्थिति, तीनोंके चेहरों पर उदासी, तीनों किसी चिन्तामें व्यस्त। इससे लोगों को आश्चर्यके साथ उनपर सन्देह भी हुआ। उनकी धारणा हुयी कि वह युवक किसी भले घराने की दो लड़कियों को बहकाकर कहीं भगाये जा रहा है। कुछ लोग एक टकसे श्यामा व प्रभा को देख रहे थे और उनकी सुन्दरता की मन ही मन प्रशंसा कर रहे थे। दयाशङ्कर को यह बुरा लग रहा था, पर किसी की आंखोंमें वह पट्टी तो नहीं बांध सकता था। उसने संकेतसे प्रभा और श्यामा को चलने को कहा। इतने ही में वहां भोलानाथ आ गये। श्यामा की दशा देखते ही उनकी आंखों से आंसू की बून्दें टपक पड़ीं और श्यामा का क्या पूछना था? वह तो अधैर्य होकर उनके चरणोंपर आ गिरी और फूट-फूटकर रोने लगी। इसपर वहां एक अच्छी भीड़ लग गयी। जितना ही उसको धैर्य धराने का प्रयत्न किया गया, उतना ही उसकी आंखोंसे आंसू की धाराएं प्रवाहित हो रही थीं। बहुत देरके बाद रोना बन्द हुआ। श्यामा नत मस्तक हो—पैरके नखसे

धरती खोदती रही और भोलानाथ उसकी ओर देखते रहे। वातावरण बिल्कुल शान्त था।

अन्तमें दयाशंकरने शान्ति भंग करते हुये कहा—"आपको इस घटना का कैसे पता चला ?"

भोलानाथने उत्तर दिया "उड़ती हुई खबर हमारे यहां पहुंची, पर उसपर विश्वास नहीं हुआ। कञ्चनपुर पहुंचने पर जिसकी कल्पना भी मैंने नहीं की थी, वह दृश्य सामने आया। आपने इस अनाथिनी पर बड़ी कृपा की है, भगवान आपका भला करेंगे।"

दयाशंकरने कहा—"मैं क्या कृपा करूंगा ? मेरे समान साधारण आदमीसे किसी की क्या भलाई हो सकती है ?"

भोलानाथने दयाशंकर को अपने यहां चलने को कहा, पर दयाशंकरने इसे स्वीकार नहीं किया। इसपर भोलानाथने श्यामा को अपने साथ ले जाने की इच्छा प्रकट की।

दयाशंकरने कहा—"अगर आपको समाज का कोई भय न हो, तो श्यामाको अपने साथ ले जाइये। अगर भयकी आशंका हो, तो मेरे ही साथ रहने दीजिये।"

उत्तरमें भोलानाथने कहा—"सामाजिक भय का तो मैं कोई कारण नहीं देखता हूं। आप इसे मेरे साथ जाने दीजिये; क्योंकि संकटके समय बोझ हलका अच्छा होता है।"

श्यामा कुछ बोल न सकी। मन ही मन उसने दयाशंकरके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। उठकर उसने दयाशंकर और प्रभाके

चरणों को स्पर्श किया; फिर पिताके साथ वह चल पड़ी। दयाशंकर भी वहांसे प्रभाके साथ बाजार की ओर बढ़ा। प्रभा ने दयाशंकरके हाथमें सोने का अपना एक आभूषण दिया। दयाशंकर को उसे बेचने में संकोच मालूम हो रहा था; क्योंकि उसकी माँ का दिया प्रभाके शरीर पर वह अन्तिम चिन्ह था। प्रभा दयाशंकरके हृदयकी बात समझ गयी, उसने कहा—"इसमें संकोच का क्या कारण है? आपकी जिन्दगी रहेगी तो पीछे बन जायेगा। अभी की समस्याका तो हल निकालिये। कहावत भी है कि आभूषण सुखके समय का शृङ्गार होता है और विपत्तिके समय का आहार। आप कठिनाईमें फंसे रहें और मैं शरीर पर आभूषण रखूं, यह शोभा नहीं देता है।"

दयाशंकरने उस जेवर को एक सोनार की दुकानमें बेच दिया। दिन भर अपनी यात्रा का वह कार्यक्रम बनाता रहा। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि वह किधर जाय। गुत्थी नहीं सुलझने पर भी दस बजे रातमें ट्रेन आने पर वे शिमला की ओर चल पड़े।

ट्रेन धूंआं फेंकती हुई आगे की ओर भाग रही थी। प्रभा खिड़कीसे बाहर की ओर झांक रही थी। उसका स्टेशन उससे बहुत दूर हट गया। उसकी आंखोंके समक्ष गांव घर बहुत तेजी से आते थे और ओझल हो जाते थे। जैसे-जैसे रात चढ़ती जाती थी, वैसे-वैसे ट्रेन भी दूर निकलती जाती थी। उस दृश्य को देखकर मालूम पड़ता था कि मानो दोनोंमें बाजी लगी

थी। प्रभा यह देखने में लीन थी। इसी बीच दयाशंकरने पीछे से उसकी चोटी खींच ली। वह चौंक उठी। फिर उसने हंसकर कहा—"अगर इस डब्बेमें दूसरा कोई होता तो ...।"

दयाशंकर भी मुस्कुरा उठा।

प्रभाने कहा—"श्यामा अब मायके पहुंच गयी होगी।"

दयाशंकरने उत्तर दिया—"वह कभी पहुंच गयी होगी।"

प्रभाने कहा—"उसका स्वभाव तो अच्छा मालूम होता है। दो ही महीने की संगतिमें उससे मुझे बहुत ही प्रेम हो गया था। फिर कब उससे मिलूंगी, इसका कोई निश्चय नहीं है।"

दयाशङ्करने कहा—"वास्तवमें वह बहुत ही भोली-भाली है। उसकी प्रकृति सरल और वाणी मधुर है। पंचोंने उस निर्दोष नारीके साथ कैसा अन्याय किया है? इस काण्ड का मूल कारण कामेश्वर है। अपने स्वार्थके वशीभूत हो इस प्रकार का अन्याय कर उसने अच्छा नहीं किया।"

प्रभाने कहा—"मेरे कहने पर कामिनीने उसे समझाया था कि एक अनाथ अबला को सताना अच्छा नहीं है। इसका भयंकर परिणाम निकल सकता है। पर; उसने उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया।"

दयाशङ्करने कहा—"बचपनसे ही वह दुष्ट प्रकृति का आदमी है। सभी दुर्गुण उसमें भरे हैं।"

प्रभाने कहा—"उसकी निन्दा सदा होती रहती है।"

दोनों इसी प्रकार बातें करते हुये लम्बी यात्रा पार कर रहे

थे। रात भी अधिक बीत गयी थी। प्रभा को नींद आने लगी। वह दयाशङ्कर की जांघ पर सिर रखकर सो गयी। ठंढी हवाके स्पर्शसे निद्रा देवीके अंकमें प्रवेश करने में देर न लगी। दयाशङ्कर भी बेंचके सहारे सो गया।

ट्रेन जोरोंमें जा रही थी। दैव योग उसी लाईन पर विपरीत दिशासे आनेवाली ट्रेनसे वह लड़ गयी। बहुतसे यात्रियों को अकाल व असमय में ही मृत्यु के मुखमें प्रवेश कर जाना पड़ा? किन्तु जो घायल थे, उन्होंने महसूस किया कि ट्रेन दुर्घटनामें उनकी दुर्दशा हुयी है। दयाशङ्कर भी आहत होकर लाईनसे कुछ दूर पर पड़ा था। पहले तो वह कराह रहा था, परन्तु जब उसे प्रभा का स्मरण आया तो अपनी पीड़ा भूल गया और प्रभा, प्रभा कहकर चिल्लाने लगा। पर; उस कोहराम में उसकी आवाज सुनता कौन है?

उधर खूनी ट्रेनोंने भी अपने अंग-प्रत्यङ्ग छिन्न-भिन्न होने पर लड़ाई बन्द कर दी।

रेलवे कर्मचारी अपना अपराध छिपाने और सरकार को कलंकसे बचाने के लिये डब्बोंमें लाशें भरने लगे। यहां तक कि बहुतसे घायल व्यक्ति भी उन्हीं डब्बोंमें भर दिये गये। दयाशङ्कर यह दृश्य देखकर और भी मर्माहत हो उठा। उसे सन्देह हुआ कि—"कहीं प्रभा भी उन्हीं डब्बोंमें न हो?"

—❀—

१५

मोटी गद्दी पर चादर बिछी हुई थी, जिसपर जगनदास पड़ा हुआ भैंस की नाईं सों-सों कर रहा था। उसी समय योगिनीने उसके सामने पान की तश्तरी रख दी। जगनदासने हँस कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसके कोमल कपोलों का चुम्बन किया। योगिनीने मुस्कुरा कर अपनी सुकुमार अंगुलियोंसे उसके गालपर एक हलकी चपत लगा दी। इससे वह और भी आनन्दमें विभोर हो गया। योगिनीने कुछ रुक कर कहा—"मुझे तो गर्भ रह गया।"

इतना सुनते ही जगनदासके चेहरे का रङ्ग बदल गया। आश्चर्य और भयसे मिश्रित शब्दोंमें उसने कहा—"गर्भ! गर्भ! गर्भ कैसे रह गया?"

योगिनीने आंखें तान कर उत्तर दिया—"तुम्हारे ऐसे पतितके प्रश्न का उत्तर मेरे पास नहीं है। क्या तुम्हारा ख्याल है कि इसके लिये और कोई उत्तरदायी है? क्या मैंने किसी अन्य पुरुष से प्यार किया? तुमने मेरा धर्म नष्ट किया और फिर पूछ रहे हो कि गर्भ कैसे रहा? अगर इसके उत्तरदायित्वसे बचने का तुमने प्रयत्न किया, तो तुम्हारी सारी करतूतों का मैं भण्डाफोड़ कर दूंगी और साथ ही साथ जयशङ्कर बाबूके समक्ष सारी स्थिति स्पष्ट कर दूंगी।"

योगिनी की बातोंसे जगनदास को और भी भय लगा। अपना भाव छिपाते हुये उसने कहा—"क्यों तुम रंज हो गयी? मैंने तो मजाकमें कहा था। प्रेमी और प्रेमिकामें तो प्रायः ऐसी बातें हुआ ही करती हैं। संसार की दृष्टिमें तुम योगिनी हो, परन्तु जहां तक हम दोनों की दुनिया सीमित है, वहां तुम मेरी पत्नी और मैं तुम्हारा पति हूं। मेरे न रहने पर इस मठ की स्वामिनी तो तुम्ही बनोगी।"

जगनदासके इन शब्दोंसे योगिनी का क्रोध शान्त नहीं हुआ। काली नागिन की भांति अब भी वह फुफकार छोड़ रही थी और उसकी आंखोंसे चिनगारियां निकल रही थीं। वह आवेशमें बोलती जाती थी—"तुमने मेरा घर छुड़ाया, परिवार से मुझे विलग किया, मठमें लाकर रखा और अंतमें नर्कके कुण्ड में फेंक दिया। फिर भी तुम मजाक की बातें करते हो? पहले तुमने मेरे यौवन और सौन्दर्यके साथ मजाक किया और अब मेरे जीवनके साथ मजाक कर रहे हो। मुझसे भयंकर भूल हो गयी, लेकिन अब पश्चाताप करने से कुछ होने को नहीं है। यह दुखड़ा तो अब जीवन भर का है। मैं समझती हूं कि मृत्यु के बाद भी मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। अब तो ...।"

इतने ही में बाहरसे किसीने किवाड़में धक्का दिया। उसके स्वतः खुलते ही वह कमरे में प्रवेश कर गया। उसको देखते ही योगिनी दूसरे दरवाजे से भागने लगी, पर आगन्तुक की नजर से वह छिप न सकी। उसके गालों पर अब भी पान का

दाग लगा हुआ था, जिसको आंचलसे मिटाने का वह प्रयत्न कर रही थी।

वह आगन्तुक कोई बाहरी आदमी नहीं था, बल्कि उसी मठ का कलर्क था। उसे देखते ही जगनदास की आंखें लाल हो गयीं। उसने क्रोध भरे शब्दोंमें कहा—"तुम अदब कायदा कुछ नहीं जानते हो? केवल अंग्रेजी पढ़-लिख लेनेसे कुछ नहीं होता है। सभ्यता सिखो।"

कलर्कने भी रूखे शब्दोंमें कहा—"क्या सभ्यता सिखूं?"

इसपर जगनदासके क्रोधका पारा और भी ऊपर चढ़ा। दांत पीसते हुये उसने उससे पूछा—"किस मूर्खने तुम्हारी नियुक्ति की थी?"

कलर्कने भी क्रोध भरे शब्दोंमें उत्तर दिया—मेरी नियुक्ति उस व्यक्तिने की थी, जिसने आपको इतने बड़े राज्य का सिंहासन प्रदान किया है?"

जगनदास ने उपेक्षित भाव से कहा—"तुम्हारे कहने का अभिप्राय जयशंकर से है? उसको भी तुम बुद्धिमान समझते हो? उसको तो यह भी मालूम नहीं है कि भक्ति क्या है? उसने सारा जीवन तो भोग विलास में व्यतीत किया और आज वैराग्य लिया है? उसे यह भी ज्ञान नहीं है कि इन्द्रियों पर अधिकार किये बिना योग-साधना में सफलता नहीं मिलती है।

कलर्क ने कहा—"आप ज्ञानी हैं और जयशंकर बाबू

अज्ञानी हैं। आपके योग का यश चारों ओर फैल चुका है। यह योगिनी कौन है, कहां से आयी है और कैसे लायी गयी है? सबको पता है। पाप छिपाने से नहीं छिप सकता है। वह तो स्वयं प्रकट होता है। आपके पाप का अंकुर जम चुका है। आपको अब समझ जाना चाहिये कि विनाशके समीप आप पहुंच गये हैं।"

जगनदास इसका उत्तर न दे सका, पर भूखे सिंह के समान उसकी ओर देखता रहा।

१६

विवाह के बाद प्रथम बार जब प्रभा अपने मायके पहुँची, तब उसकी दशा पर सब रो पड़े। उसकी वेशभूषा अमंगल की सूचना दे रही थी। कौमार्य की कान्ति उसमें अब मालूम नहीं हो रही थी। गांव वाले प्रायः यही कह रहे थे "दयाशंकर के साथ इसका विवाह कर वकील साहब ने अच्छा नहीं किया। आज की इसकी स्थिति देखकर तो सहसा मुख से निकल पड़ता है कि कोमल पुष्प को कांटे में फेंक दिया गया।"

प्रभा जिससे मिलने के लिये वहां गयी थी और जिसके समक्ष रोकर अपने हृदय की वेदना दूर करना चाहती थी, वह उसकी मां चम्पा संसार में नहीं रही। कुछ दिन हुये कि उसने आत्म हत्या कर ली।

जिस अट्टालिका में प्रभा ने अपना कौमार्य व्यतीत किया था वह वीरान होकर पड़ी थी। खण्डहर के रूप में वह अतीत का स्मरण करा रही थी। चम्पा के श्रृंगार कक्ष में अर्द्ध रात्रि में श्रृगाल रोया करते थे। प्रभा उस खण्डहर की ओर देख रही थी और खण्डहर उसकी ओर। प्रभा को ऐसा मालूम हो रहा था मानो वह भवन उससे कह रहा है कि प्रभा, तुम्हारी भूल से हमारी यह दशा हुई है। अगर कुछ दिन पूर्व

तुम यहां आयीं होती तो आज मेरी यह दशा न हुई होती। लेकिन अब इस दुर्दिन में कोई भी सुन्दर कल्पना करना मेरी मूर्खता होगी। खैर, यह न मेरा दोष है और न तुम्हारा; सब अपने भाग्य का दोष है। मेरे समीप आने का साहस मत करना, क्योंकि कष्टों का सामना करते-करते मैं निर्बल हो चुका हूं और मेरा ज्ञान नष्ट हो चुका है। इससे यह सम्भव है कि तुम्हारे जिस कोमल शरीर की सर्दी, गर्मी और वर्षा से मैंने रक्षा की थी, आज उसी पर गिरकर अपने अन्तिम समय में कलंक न ले लूं।"

इसके बाद प्रभा ने अपने पिता की खोज की। पिता संसार में अवश्य थे, लेकिन जल में कमल के समान। एक संन्यासी के रूप में वे श्मशान में निवास कर रहे थे। उसने उनके सम्बन्ध में सुना कि उनके स्वभाव में इतना बड़ा परिवर्तन आ गया है कि किसी से मिलना जुलना वे पसन्द नहीं करते हैं। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति, जो कई लाख रुपये की है, मन्दिर को लिख दी है। उस मन्दिर का पुजारी जगनदास मठ का महन्त बन गया है।

प्रभा पिता से मिलने के लिये श्मशान पहुंची। उसने सोचा था कि पिता की कुटिया में मृत शरीरों की भरमार होगी, पर उसकी धारणा गलत निकली। वहां एक हवन कुण्ड था, जिसमें दिन-रात साकल्य जलता रहता था और उसकी सुगन्ध से श्मशान की दुर्गन्ध मिटती रहती थी। एक मेज पर धार्मिक

पुस्तकें रखी थीं और एक छोटी चौकी पर फल फूल रखे थे।

वह अधिक देर तक धैर्य धारण न कर सकी और उनके चरणों पर जा गिरी। उनका ध्यान भंग हो गया। वे उसे पहचान तक न सके। उन्होंने पैर छोड़ने को कहा, पर पैर छूटे नहीं, बल्कि अश्रु जल से धुल गये। आंसू ने एक वैरागी-हृदय को भी द्रवित कर दिया। उन्होंने अनुभव किया कि आंसू में एक अद्भुत शक्ति छिपी रहती है। क्लेश और विपत्ति से जब मनुष्य घबड़ा जाता है, तब उसके अन्तस्थल से गर्म जल का श्रोत आंखों की राह से निकल पड़ता है और वह ज्योंही बाहर आती है, त्योंही दया दौड़कर उसके दुःख में हाथ बंटाने का प्रयास करती है।

बहुत देर तक रोने के बाद जब उसने अपना सिर ऊपर उठाया तब जयशंकर बाबू की पहचान में आयी कि वह कौन है। उसकी दशा पर वे आश्चर्यचकित हो उठे। उन्होंने पूछा—"बेटी! तुम्हारी यह दशा कैसी?"

प्रभा ने उत्तर दिया—"पिता जी, क्या कहूं? संसार आज वीरान हो चुका है। एक आशा थी आप लोगों की, उसका भी दृश्य कुछ और ही देखती हूं।"

इसके बाद उसने रेलवे दुर्घटना की चर्चा की और अपने पति की मृत्यु की आशंका से पुनः रो पड़ी। उसी की बातों पर जयशंकर बाबू के आभापूर्ण मुखड़ा पर कालीघटा घिर आयी। चिन्ता से वे स्याह हो गये।

उनके एक प्रश्न के उत्तर में प्रभा ने कहा—"मुझे थोड़ा भी स्मरण नहीं है कि कब और कैसे ट्रेन लड़ गयी और कब मैं अस्पताल पहुंचायी गयी। कई दिनों के बाद अपने को अस्पताल में पाकर मुझे आश्चर्य हुआ, लेकिन जब उनको मैंने नहीं देखा तो हृदय-वेदना और भी बढ़ गयी। डाक्टर और नर्सों से मैंने उनकी तलाश करने का अनुरोध किया। उन्होंने घायलों की सूची देखकर मुझसे कहा कि उनका नाम तो इसमें नहीं है। मेरी चिन्ता और बढ़ गयी। मेरे मन में अशुभ कल्पनाएं उठने लगीं। उस अवस्था में मैंने मृत्यु की मांग की। पर मुझ हतभागिनी के समीप मृत्यु कैसे आवे ?"

बहुत देर तक मौन रहने के बाद जयशंकर बाबू ने कहा—"मेरी आत्मा कह रही है कि दयाशंकर जीवित हैं। उनसे तुम्हारा मिलन अवश्य होगा, लेकिन अभी नहीं कुछ वर्षों के बाद। अब तुम्हारे जीवन-यापन का प्रश्न उठता है। मेरे पास तो कोई भी सम्पत्ति शेष नहीं रह गयी कि दूं। तुम्हारी मां की इच्छा थी कि, हमारी विशाल सम्पत्तिका स्वामी दयाशंकर बने। इस सम्बन्ध में मैंने दयाशंकर के पास पत्र भी लिखा था, पर उन्होंने जो उत्तर दिया उसका सारांश यही था कि हमारी सम्पत्ति ग्रहण करना उन्हें स्वीकार नहीं है। इससे तुम्हारी मां के हृदय पर चोट पहुंची। उसने आत्म हत्या कर ली। उन दोनों की नादानी पर मुझे हंसी आती है। उसके बाद मैंने सारी सम्पत्ति मन्दिर को लिख दी और वहां का महन्त जगन-

दास को बना दिया है। खैर अब उससे तुमको क्या मतलब ? तुम तो पढ़ी लिखी लड़की हो। जीवन-निर्वाह के लिये तुम्हें क्या चिन्ता करनी है ? कहीं किसी स्कूल में जाकर अध्यापिका का काम कर लो, बस जिन्दगी कट जायगी। मेरी शुभ कामना तुम्हारे साथ है। तुम्हारा कल्याण हो।"

१७

मकर संक्रांति की धूम महीनोंसे चली आ रही थी। पंडितोंने पहले ही से यह बात फैला रखी थी कि इस बार के गंगा-स्नान में बहुत बड़ा पुण्य है। ऐसा संयोग महाभारत के बाद ही आया है। साधारण लोगों पर पण्डितों की बातों का अधिक प्रभाव पड़ता है और विशेष कर महिला समाज उनको बहुत ही महत्व देता है। अन्य ग्रामोंके समान रामपुरमें भी प्रयागराज जानेकी घर-घर तैयारियां होने लगीं। श्यामाको भी उसकी सखी सहेलियोंने प्रयागराज चलने को कहा। बूढ़ी महिलाएं उसे उपदेश देती हुई कहने लगीं—"पगली! विधवाओं के लिये जगमें क्या रखा है? उसके लिये तो तीर्थ-व्रत ही सब कुछ है। अब भी तो चेतो जो आगे जन्ममें काम आवेगा।"

प्रयागराज में इतनी जबर्दस्त भीड़ एकत्रित हुई कि वैसी कल्पना भी नहीं की गयी थी। कहीं तिल रखने की जगह नहीं थी। कोई भी सार्वजनिक स्थान शेष न रह गया, जहां यात्रियों ने अपने अड्डे नहीं जमाये। मेला कई दिनों तक लगा रहा। प्रातः और संध्या नगरमें नवीन आकर्षण देखने को मिलता था। उस समय यात्री बहुत ही सज-धज कर निकलते थे, जिससे

प्रयाग की छटा में अवश्य बहुत कुछ वृद्धि मालूम होने लगती थी।

संक्रान्ति के दूसरे दिन दस बजे रात में श्यामा अपनी सहेलियों के साथ मेला घूमने निकली। वह दो ही आंखों से बाजार की सजावट देख रही थी, परन्तु उसपर सैकड़ों शैतानों की आखें लगी थीं। वह जहां खड़ी होती वहीं कुछ मनचले पुरुष खड़े हो जाते और उसके आगे बढ़ने पर छाया के समान वे भी उसके साथ हो लेते। श्यामाने अपने सम्बन्ध में उनके मुख से यह भी सुना—"अप्सरा को मात करने वाला इसने रूप पाया है। इस सौन्दर्य की मूर्ति को देखकर तो मालूम होता है कि सुन्दरता स्वयं नारी का शरीर धारण कर विश्व में विचर रही है।"

एक स्थान पर वह गुण्डोंके दो दलों के बीच पड़ गयी। जब उसने आगे बढ़ने का प्रयत्न किया तब गुण्डों ने उसके वक्षस्थल पर हाथ रखे और जब वह पीछे की ओर मुड़ने लगी तब गुण्डों ने निर्लज्जतापूर्वक उसका मुख चुम्बन किया। वह उन्हें भला-बुरा कहती हुई दांयी ओर से निकल गयी और अपनी रक्षा के ख्याल से एक तंग गली में प्रवेश कर गयी। पर उसे क्या मालूम था कि छाया के समान दुर्भाग्य उसका पीछा कर रहा है। वह निर्बोध नारी इस बातसे भी अनभिज्ञ थी कि तंग गलियों में ही गुण्डों को खुलकर खेलने का अवसर मिलता है। बीच गली में पहुंचते ही वह गुण्डों के पंजेमें फंस गयी।

उन्होंने उसके साथ मनमानी करने का प्रयत्न किया। म्युनिसिपलिटी की टिमटिमाती हुई बत्तियां, जो स्वयं अपने भाग्य पर रो रही थीं, बाहरी दुनिया का ध्यान उसकी दुर्दशा की ओर आकर्षित करने में असमर्थ रही। वहीं से वह अपहृत की गयी।

माघ के महीने की अर्द्ध रात्रि में मैदान से होकर मोटर जोरों से भागी जा रही थी। ठंढी हवा के झोंकों से पतली साड़ी के नीचे श्यामा का सारा अंग कांप रहा था और साथ के दानवों के भय से हृदय कम्पित हो रहा था। उस घोर निशा में कहीं किसी मनुष्य की आवाज भी नहीं सुनाई पड़ रही थी। उसके मस्तिष्क में तरह-तरह की भावनाएं उठकर उसकी अन्तरात्मा को असह्य पीड़ा पहुंचा रही थीं। अपने भविष्य को अन्धकार मय देखकर वह घबड़ा रही थी। उसे यह भी ज्ञात नहीं था कि वह निर्जीव गाड़ी उस सजीव मूर्ति को लेकर किस अज्ञात स्थान में छोड़ने जा रही थी, जहां सब तरह से उसके लिये खतरा था। जिस प्रकार आकाश के रंग से भयंकर तूफान की सूचना मिल जाती है, उसी प्रकार गुण्डोंके हँसी-मजाकसे उसको भविष्यकी कुछ झलक मालूम हो रही थी।

प्रातःकाल मोटर चुनार शहर में पहुंची। वहां श्यामा को एक कमरे में बन्द कर दिया गया। इसके बाद सभी गुण्डे चले गये। वहां केवल श्यामा रह गयी और उसका पूर्व परि-

चित व्यक्ति कामेश्वर। कामेश्वर के ओठों पर मुस्कुराहट थी और श्यामा की आंखों में आंसू।

कामेश्वर उसके रूप का प्यासा था; इसलिये अपनी तृष्णा की तृप्ति के लिये वह अधीर हो रहा था। उसके कठोर हाथ उसकें कोमल अंगों को पकड़ने के लिये बढ़े ही थे कि मकान मालिक ने आवाज दी किसने यह घर किराया लिया है? उत्तर देने के लिये कामेश्वर कमरे से बाहर चला आया।

१८

जब जब कामेश्वर ने श्यामा के सतीत्व नष्ट करने का प्रयत्न किया तब तब श्यामा यह कहकर अपनी रक्षा करती रही कि अगर तुमने मेरा शरीर स्पर्श किया तो मैं आत्म हत्या कर लूंगी या चिल्लाकर लोगों को एकत्रित कर दूंगी। कामेश्वर उसकी आत्महत्या से डरता था। एक दिन उसने अति खिन्न भाव से श्यामा से कहा—"नारी कोमल स्वभाव की होती है, पर तुम्हारा हृदय तो पत्थर से भी कड़ा है, जो पिघलना नहीं जानता है। यह निश्चित है कि मेरे सिवा तुम्हें कोई दूसरा अब अवलम्ब नहीं मिल सकता है, यह भी तुम समझती हो, फिर भी आत्म समर्पण करने में तुमको क्यों हिचकिचाहट मालूम हो रही है।"

श्यामा ने इस बार अपना जादू चलाया। उत्तर देने के समय वह हँस पड़ी। उसने कहा—"इतना अधीर क्यों होते हो? जब तुमने मुझे अपने फंदे में फंसा ही लिया तब मेरे लिये दूसरा क्या चारा है? किन्तु लोक और परलोक दोनों से डरो। आखिर धर्म भी कोई चीज है। जो धर्म को नष्ट करता है, वह आप से आप नष्ट हो जाता है। इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है।"

कामेश्वर ने कहा—"अब क्या नष्ट होऊंगा, मैं तो नष्ट

हो चुका हूं। तुम्हारे पीछे मुझे कितनी बड़ी कुर्बानी करनी पड़ी है, तुम्हें क्या पता ?"

श्यामाने पूछा—"इसका आशय ?"

कामेश्वर ने उत्तर दिया—"इसका आशय यही है कि तुम्हारे लिये मैंने दयाशंकर को भाई से अलग करवाया और उसकी झोपड़ी में आग लगा दी। उसने तो गांव छोड़ दिया, किन्तु उसके मित्रों ने मेरी जान न छोड़ी। थाने में उन्होंने इस मामले को पहुंचा दिया। सरकार स्वयं मुद्दई बन गयी। अच्छे-अच्छे वकील और वैरिस्टर मुझे नहीं बचा सके, दो वर्ष की मुझे सख्त सजा हुई। जेल की अवधि तो किसी तरह मैंने काटी, परन्तु घर आने पर कुछ और ही समाचार सुनने को मिला।"

इसके बाद वह बोल न सका। श्यामाने बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा,—"क्या सुना तुमने ?"

कामेश्वरने उत्तर दिया—जब मैं जेलमें था तब कोई साधु अपने गांवमें आया और किसी युक्तिसे मेरी पत्नी को घरसे निकाल कर वह ले गया।"

श्यामा खिलखिला कर हँस पड़ी। उसने कहा—"चिन्तित क्यों होते हो ? अब तो कामिनीसे सुन्दर नारी श्यामा तुमको मिल गयी। तुम मेरे पीछे परेशान रहे और तुम्हारी स्त्री किसी दूसरे पुरुषके पीछे। यही तो संसार है। एक हाथसे करो और दूसरे हाथसे उसका फल पाओ।"

श्यामाने पुनः पूछा—"अच्छा यह तो बतावो कि मेलामें तुमने मुझे कैसे देखा ?"

कामेश्वरने कहा,—"मैंने पता लगा लिया था कि संक्रान्ति स्नान करने तुम प्रयाग जा रही हो। तुम्हारे लिये गुण्डों को मैंने काफी रुपये दिये। आखिर वहांसे हरण कर तुम बनारस लायी गयी हो।"

श्यामाने कहा—"तुमने मेरे लिये काफी परिश्रम किया।"

कामेश्वरने कहा—"तब क्या मैंने कोई कम परिश्रम किया है ? इसपर भी तुम मुझे स्वीकार नहीं करती हो।"

श्यामाके अधरों पर पुनः मुस्कुराहट आयी। उसने कहा—"मेरे हृदय पर घाव लगा है। उससे खून निकल रहा है। तुम्हीं कहो रक्तरंजित हृदय लेकर मैं तुम्हारी सेवामें कैसे उपस्थित हो सकती हूं ?"

१९

प्रभाके वियोगने दयाशंकर को विह्वल कर दिया। उसे निश्चय हो गया कि ट्रेन दुर्घटनामें प्रभा का देहान्त हो गया। इसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य और मस्तिष्क पर पड़े बिना नहीं रह सका। वह रोग-शय्या पर गिर पड़ा। स्वस्थ होनेमें कुछ दिन लग गये।

अपनी जीविका चलाने के लिये उसने नौकरी कर ली। एक जमीन्दारके यहां किसी छोटे पद पर वह नियुक्त हुआ। अपने दफ्तरके कार्यमें वह निपुण निकला और थोड़े ही दिनोंमें वह मैनेजरके पद पर पहुंच गया। उसके सुन्दर प्रबन्धमें प्रजा भी फूलने-फलने लगी और जमीन्दार का कोष भी भरने लगा। लगानके लिये न्यायालयमें जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। रैयत स्वयं आकर मालगुजारी चुका देती थी। जिस साल अतिवृष्टि या अनावृष्टिके कारण फसल नहीं होती थी उस साल का लगान माफ कर दिया जाता था। इससे चारों ओर उसकी प्रशंसा होने लगी।

अपने यश की वृद्धि सुनकर किसको प्रसन्नता नहीं होती है। मालिक और प्रजासे बधाइयां पाकर दयाशंकर को भी प्रसन्न होना चाहिये था, परन्तु वह सदा खिन्न रहा करता था। कई व्यक्तियोंने इसके कारण जानने की कोशिश की, पर

उसने किसीसे अपने हृदय की बात नहीं कही। वह मनमें कहता था,—"कारण जान कर ही लोग क्या करेंगे? क्या ये लोग स्वर्गसे प्रभा को लाकर मेरे सामने उपस्थित कर देंगे?" उसकी आत्मा सदा प्रभाके लिये विकल रहती थी। एक लम्बी अवधि बीत जाने पर भी वह प्रभा को भूल न रहा था।

एक दिन कार्यालयसे थके मांदे आकर वह अपने बिस्तर पर लेट गया। उसके चिन्तित मानस पट पर प्रभा शान्त भाव से खड़ी हो गयी। उसके स्वभावमें वही सरलता, बदन पर वही आकर्षण, अधरों पर वही मुस्कान, आंखोंमें वही मादकता और शरीरमें वही सुन्दरता विराज रही थी, जो वियोगके पहले उसमें थी।

दयाशंकर अपने जीवन-उद्यानमें ग्रीष्म ऋतु का प्रवेश समझ रहा था। उसके मनमें विचार उठा—"भाग्य भी कोई चीज है, जो मनुष्यके जीवनमें अवश्य कुछ न कुछ परिवर्तन ला देता है। यह मेरा भाग्य ही था कि प्रभा मुझे पत्नीके रूपमें मिली और यह भी भाग्य का ही दोष है कि उसने मुझसे प्रभा को अलग कर दिया। उस अनमोल रत्न को पाना मेरे पूर्व जन्म की तपस्या का फल था, लेकिन न कह सकता हूं कि कब का मेरा पाप प्रकट हुआ, जिसने अचानक ही उस रत्न को मुझसे छीन लिया। विवाहके पूर्व लोगों की धारणा थी कि पाश्चात्य सभ्यतासे प्रभावित प्रभा आदर्श ललना नहीं होगी, परन्तु वह धारणा भ्रम मात्र प्रमाणित हुयी। प्रभाने

अपने गुणोंसे सबको आकर्षित कर लिया, सबने एक स्वरमें उसकी प्रशंसा की। उसका मुझपर विश्वास था, अगर ऐसा नहीं होता तो वह श्यामा को अपने घरमें नहीं आने देती। उसने उसका स्वागत किया। उसका यह ध्यान रहता था कि उसे कोई कष्ट न होने पावे। मेरे साथ उसने जीवित जलना पसन्द किया, किन्तु मेरा साथ छोड़ना उसे स्वीकार नहीं था। कठिनाई पड़ने पर भी कभी उसके मुखड़े पर उदासी नहीं देखी गयी और कभी उसने अपना दुखड़ा दूसरेके सामने नहीं रोया। आज उसकी मनमोहिनी छटा, उसके गुण और सरल स्वभाव का स्मरण कर मुझे अतिशय कष्ट पहुंच रहा है। आज उसका हँसता हुआ मुखड़ा मुझे रुला रहा है।

"आज उसकी मृत्यु का कलंक मेरे सर पर पड़ा है। उसके माता पिताके समक्ष मैं क्या उत्तर दूंगा? जब प्रभा ही नहीं है, परिवार ही नहीं है तब यह दासता की जिन्दगी बितानेसे क्या लाभ? इससे तो अच्छा होगा कि मानव सेवामें मैं अपना जीवन व्यतीत करूं।'

दूसरे दिन लोगोंने सुना कि दयाशंकरने मैनेजर पदसे त्यागपत्र दे दिया है।

२०

समुद्र बिलकुल शान्त था। जहांतक दृष्टि जाती थी, वहां तक बिलकुल जल ही जल नजर आता था। विशाल सागर के वक्षस्थल को विदीर्ण करता हुआ जहाज रंगून की ओर जा रहा था। आकाशमें तारे चमक रहे थे और नीले जल पर श्वेत चान्दनी छिटक कर चादर का काम कर रही थी। चन्द्रमा तरंगोंके साथ आंख मिचौनी का खेल खेलता हुआ उस जलयानके आगे आगे भागता जा रहा था। मानो वह उस अथाह जलराशिमें उसका पथप्रदर्शन कर रहा था।

प्रकृतिके इस सौन्दर्यने जहाजके अधिकांश यात्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वे ईश्वरीय रचना की प्रशंसा करने लगे और दार्शनिक तो ईश्वर, जीव और प्रकृति सब पर सोचने लगे। उनके मस्तिष्कमें सारी सृष्टि नाचने लगी। स्वदेश लौटने वाले बर्मी, श्यामी, चीनी आदि प्रसन्न दीख रहे थे। परन्तु इसके विपरीत हिन्दुस्तानियों का मन उदास और खिन्न था। अपनी मातृभूमिसे विलग होने का दुःख उन्हें सता रहा था। उनमें एक महिला भी थी, जो किसी चिन्तामें निमग्न थी। उसका चेहरा काला पड़ गया था। रह रह कर वह व्यग्र हो उठती थी। कोई भी व्यक्ति उसे देख कर सहजमें अनुमान कर सकता था कि वह किसी भीषण

परिस्थिति का शिकार हो चुकी है। पर यह कोई न जान सका कि वह अपहृत नारी है, जो कि वासना का शिकार बनानेके लिये वरबश अपनी मातृभूमि की गोदसे अलग की जा रही है! अगर उस जहाज पर उसका कोई परिचित मिलता तो अवश्य आश्चर्यचकित होकर उससे पूछता—'श्यामा, तुम कहां ?'

इस पर श्यामा रो पड़ती और कामेश्वरके हाथसे अपने को मुक्त करानेके लिये प्रार्थना करती।

श्यामा को अपहृत करनेके कारण कामेश्वरके नामसे वारण्ट निकल चुका था। पुलिस उसकी तलाशमें घूम रही थी। इसलिये अपने नकली नाम पर पासपोर्ट लेकर वह श्यामाके साथ जावा जा रहा था। उस समय कामेश्वर की स्थिति उस हिंसक पशुके समान हो रही थी, जो अपने शिकार को बिना किसी बाधाके भक्षण करनेके उद्देश्यसे शान्त और एकान्त स्थान की तलाशमें इधर उधर भटकता फिरता है।

इसी बीच पूर्वसे वायु का एक झोंका चला। सम्पूर्ण आकाशमें कालीघटा फिर आयी, बिजली चमक उठी और बादल घोर शब्द करने लगे। उसकी गर्जनासे दिल दहल उठा। देखते ही देखते तूफानने अपना भयंकर रूप धारण किया। वर्षा होने लगी। प्रकृतिके इस विकट रूपको देखकर वह विशालकाय पोत भी कांप उठा। अब यात्रियोंके प्राण सूख गये। लाखों प्रयत्न हुये, पर वह जहाज नहीं रुका ; बीच समुद्र

की ओर उसकी यात्रा जारी रही। विपत्तिमें मनुष्य को अपने पापों का स्मरण होने लगता है। नास्तिक मनुष्य भी उस समय ईश्वर की याद करने लगता है। जहाजके यात्रियों की भी यह दशा हुई। सबके सब अपने पूज्य देवों का स्मरण करने लगे।

उस समय श्यामा की दशा अन्य यात्रियोंसे भिन्न थी। वह जहाजके शीघ्र डूब जाने की प्रतीक्षा कर रही थी; जिससे समुद्र की गोदमें वह चिर शान्ति प्राप्त कर सके। मनुष्य जब कष्टोंसे ऊब जाता है तब मृत्युके अंकमें आश्रय पाना अपने लिये अच्छा समझता है।

उस झंझावातमें पथभ्रष्ट यात्रीके समान वह जलयान हिन्द महासागरमें इधर उधर भटने लगा। उसकी स्थिति देख सहजमें ही ज्ञान होता था कि अपने अस्तित्व को खतरेमें पाकर मानो वह भी भयभीत होरहा था। यात्रियोंके कोलाहल सुनकर मगर, झष आदि जल-जीव जहाजकी चारों ओर चक्कर काटने लगे। शायद अपने आहार को सामने देखकर उसे भक्षण करनेके लिये वे अति व्यग्र हो रहे थे। प्रचण्ड आंधी और समुद्र की तरंगोंसे ज़ब जहाज युद्ध नहीं कर सका तब उसने अपनी पराजय स्वीकार की, किन्तु इस पर भी निर्दयी विजेता के समान तूफानने उस पर दया नहीं दिखलायी और उसका सर्वनाश करके छोड़ा। अथाह सागरमें वह जहाज एक क्षणके लिये रुका। यात्रियों को बचने की आशा हो आयी, पर देखते

ही देखते वह आशा निराशामें परिणत हो गयी, जहाज समुद्र के गर्भमें विलीन हो गया।

प्राण का मोह सबसे बड़ा होता है। यद्यपि दुःखसे घबड़ा कर प्राणी मृत्यु की गोदमें विश्राम लेना पसंद करता है तथापि जब मृत्यु समीप आ जाती है तब वह प्राणी पीछे भागता है और उससे त्राण पाने का प्रयत्न करता है। श्यामा की भी यह दशा हुई। उसके सामने जब मृत्युने अपना मुंह फैलाया तब वह भयभीत हो उठी। अन्य व्यक्तियोंके समान अपनी रक्षाके लिये उसने भी प्रयत्न किया; लाइफबोट का सहारा लिया। उसकी आंखोंके सामने ही तरंगोंमें हजारोंयात्री अदृश्य हो गये और उस जल-राशिमें कौन कहां गया, कहना कठिन था। घंटों तक प्रकृति का यह विकराल रूप रहा। अन्तमें तूफान शान्त हुआ, आकाश भी शान्त हुआ और समुद्र भी शान्त हुआ। पर श्यामा का हृदय शान्त नहीं हुआ। उसे अब भी भय हो रहा था कि कहीं जलसे निकल कर कामेश्वर उसकी नाव न पकड़ले या स्वयं डूबकर वह उसके पास न पहुंच जाय।

विशाल सागर का तट कहीं नजर नहीं आ रहा था। आंखोंके समक्ष केवल जलका साम्राज्य फैला हुआ था। दिशा का ज्ञान बिलकुल ही नहीं हो रहा था। जब भयसे उसका हृदय कांपने लगता था तब आंखें मून्द वह कलेजे पर हाथ रख कर भगवान का स्मरण करने लगती थी। इस कठिन परि-स्थितिमें उसकी रात समाप्त हुई। जब सूर्य का दर्शन हुआ तब

उसके हृदयमें कुछ आशा का संचार हुआ, लेकिन इससे प्राण बचने का तो कोई उपाय नहीं दीख पड़ता था। अब उसे मानव-जातिसे मिलने की आशा नहीं रही। उसके धैर्य का बांध टूट गया। सावन-भादोंके समान उसकी आंखें बरसने लगीं; जिससे जलधिका रिक्त कोष पूरा होने लगा।

मनुष्य चाहे जो कुछ सोचे, उसके भाग्यमें चाहे जो कुछ लिखा हो, परन्तु प्रकृति अपना काम करती जाती है। श्यामाने कई दिन उसी समुद्रमें सूर्योदय देखा, कई दिन संध्याकी लालिमा देखी, कई रात गगनाङ्गन को तारोंसे जगमगाते देखा और फिर इन्द्रजालके खेलके समान उन्हें अदृश्य होते देखा। चन्द्रमाके घटने-बढ़ने से पक्ष और महीनाके अवसानके साथ ही उसे अपने जीवनके अवसान की घड़ी भी निकट आती हुई लख पड़ती थी। अन्य सदमाओंके साथ उसे भूख और प्यास भी सताने लगी। उदर भरने का तो उसके सामने कोई साधन न था, परन्तु प्यास की तृप्तिके लिये जलका इतना बड़ा भण्डार था, जिसकी कभी कल्पना भी उसने नहीं की थी। पर हाय रे भाग्य! यहां भी तुमने धोखा खाया। उस विशाल जल भण्डार का एक बून्द भी उसे अपने मुखमें रखने का साहस नहीं हुआ। उसने महसूस किया कि प्रकृतिने भी अपनी दुष्टता पूर्ण नीतिसे बाध्य होकर जलकी इस अपार राशिमें इतना अधिक नमक मिला दिया है, कि तृषित मानव समाज सहजमें ही इससे वंचित रह जाय।

नाव तरंगों पर उछलती हुई बुद्धिहीन व्यक्तिके समान लक्ष्य भ्रष्ट होकर जा रही थी। उसके साथ श्यामा का भाग्य भी बंधा हुआ था। यही उसके जीवन-मरण की सहचरी थी। उसे क्या मालूम कि उसकी वह निर्जीव सहचरी उसको पुनः उसी मानव जगतमें लेती जा रही है, जहां उसका दुर्दिन बड़ी उत्सुकताके साथ उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।

पांचवें दिन संध्याके आगमनके पूर्व उसे दूरसे पर्वत का शिखर दृष्टिगोचर हुआ। उसके किनारेके वृक्ष हवामें झूमते हुये मानो उसका स्वागत कर रहे थे। श्यामा को पर्वत और वृक्षों को देखकर हर्ष हुआ। ज्यों-ज्यों नाव किनारे की ओर बढ़ती गयी त्यों-त्यों उसके प्राण लौटने लगे। जिस समय नाव किनारे पर आकर लगी उस समय उसे ऐसा मालूम हुआ मानो मृत्युके बाद वह पुनः जीवित हो उठी है। "तरंगोंके साथ वह नाव पुनः समुद्रमें लौट न जाय" इस भयसे वह शीघ्र ही नाव से उतर गयी। उसके कांपते हुये पांव आगे बढ़े, पर अधिक दूर चलने का उसे साहस नहीं हुआ। वह वहीं बैठ गयी। असीम जल भण्डारसे निकलने के बाद उसने अपने को एक भयानक वनमें पाया। जिसमें बाघ, सिंह, हाथी और अन्य बनैले जानवर चिग्घाड़ मार रहे थे। उनकी भयंकर गर्जनासे उसका हृदय कांप रहा था। विशाल सागरमें जैसे उसका कोई सहायक नहीं था वैसे ही इस विकट जंगलमें उसका कोई मददगार नहीं था। यह देखकर तो उसे यही अनुभव हुआ कि मनुष्य कहीं भी

जाय, पर भाग्य उसका साथ नहीं छोड़ता है। किसी प्रकार उसकी रात पास की एक गुफामें व्यतीत हुई।

प्रातःकाल रंग-बिरंगके पक्षी मधुर स्वरमें कलरव करने लगे। श्यामाने देखा कि वहां कोई पक्षी लाल था, कोई श्वेत, कोई काला और कोई बिलकुल पीला था। किसी पक्षी का अगर पर नीले बादलके समान था तो उसकी चोंच लाल थी और अगर किसी पक्षी की पूंछ लाल थी तो उसकी चोंच काली और सारा शरीर हरा था। इस प्रकार अनेक रंगों की चिड़ियाएं थीं। इनकी सुन्दर बनावट देखकर उसने अपने मनमें कहा कि इनकी रचनामें विधाताने अपनी सारी बुद्धि लगा दी है। उसने विभिन्न प्रकारके वृक्ष और लताओं को फल और फूलोंसे लदे देखा। सुमनों की सुगन्धसे वहां स्वर्गलोक का अनुभव हो रहा था।

इसके बाद उसकी दृष्टि झरना की ओर गयी, जहांसे स्वच्छ और निर्मल जल भूमि पर गिरकर दरारों को पार करता हुआ समुद्रमें मिलकर अपना अस्तित्व खो देता था। श्वेत जल की धाराओंमें मृग छौने निर्भीकताके साथ जल पीकर छलांग मारते थे। वृक्षोंसे भालू और बन्दर उतर कर शीतल जलसे अपनी प्यास बुझाते थे। सर्पादि विषैले जीव-जन्तु भी निर्भय होकर घूम रहे थे।

कुछ दिन उठने पर कुंजोंमें जंगली लोगों की नारियां फल-फूल की खोजमें विचरने लगीं। देखने में तो वे बिलकुल

काली थीं, लेकिन उनका सुडौल और स्वस्थ शरीर। उनमें अपूर्व कान्ति उत्पन्न कर रहा था। उनकी सुन्दर मुस्कानमें बिजली छिपी हुई थी। युवकों की ढिठाई पर जब वे हँस पड़ती थीं तब मालूम होता था कि काली घटामें विद्युत चमक उठी हो। बलकल बसन और पुष्पोंके हार उनमें आकर्षण उत्पन्न कर रहे थे। युवक और युवतियां फूलों को तोड़ने के लिये दौड़ पड़ते थे और एक दूसरे को पराजित कर सफलता प्राप्त करना चाहते थे। वह प्रेम की प्रतिद्वन्दिता थी, द्वेष की नहीं। प्रकृति की इस रंगस्थलीमें एक पुष्प का बहुत बड़ा महत्व मालूम होता था।

जब उन जंगलियों की दृष्टि श्यामा पर गयी तब कुछ क्षण के लिये वे अपने को प्रायः भूल-से गये। श्यामाके रूप लावण्य और अपूर्व सौन्दर्यको देखकर उन्होंने समझा कि यह उनकी बन देवी है, जिसकी पूजा और उपासना वे करते हैं। इस सघन बन में इसकी कृपासे जंगली सभी विपदाओं पर विजय पाते हैं।

बन देवीके आगमन की खबर विद्युतके समान सारे जंगलमें फैल गयी। जंगली मनुष्य हजारों की संख्यामें वहां एकत्रित हुये और उन्होंने फल-फूल की उसे भेंट चढ़ाई। इसके बाद उन्होंने उसे प्रसन्न करने के लिये विभिन्न प्रकारके नृत्य किये। लेकिन इधर बनदेवी की दशा स्वयं बुरी हो रही थी। विशालकाय जंगली पुरुषों और महिलाओंके लम्बेलम्बे दांत, काले और कुञ्चित केश, छोटी-छोटी आंखें, मोटे ओठ और चौड़ी नाकें देखकर वह भयभीत हो रही थी। उन्हें नरभक्षी राक्षस

समझ कर वह डर रही थी। उसे आशंका हो रही थी कि नृत्य समाप्त करने के बाद वे उसे मारकर खा न जांय। अपनी रक्षा के ख्यालसे एक कृत्रिम मुस्कानके साथ संकेतसे उसने उन्हें चले जाने को कहा। बन देवी को प्रसन्न जानकर वे सब वहांसे चले गये।

श्यामाने वहीं पर एक गुफामें अपना घर बनाया। नित्य उसके यहां स्त्रियां कन्द-मूल फल-फूल लेकर पहुंचतीं और उसे समर्पित कर अपनी राह लेती। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया तैसे-तैसे उन जङ्गलियोंके साथ उसकी घनिष्ठता बढ़ती गयी।

एक दिन श्यामा ने अपने मन में कहा—"आज छः महीने से मैं यहां रह रही हूं, अब मन ऊब गया है; कब तक इस बन में रहना पड़ेगा समझ में बात नहीं आ रही है।"

स्वदेश लौटने की चिन्ता उसको सताने लगी। पर; सामने विशाल समुद्र और तीन ओर विकट बन देखकर उसका हृदय घबड़ा उठा। सभ्य संसार की ओर उसका पथ-प्रदर्शन करने वाला कोई नहीं दीखता था। अन्त में उसने कुछ जंगलियों को लेकर समुद्र के किनारे से अपनी दुनिया में आने का प्रयत्न किया। गुफा, जंगल और जंगलियों को छोड़ने में उसे दुःख हो रहा था। दो दिनों तक उस भयानक पथ पर चलने के बाद उसको आगे बढ़नेका साहस नहीं हुआ। वह चिन्ता-मग्न होकर बैठ गयी। इसी बीच एक जहाज पर उसकी दृष्टि गयी।

उसके हाथ का संकेत पाकर एक नाव किनारे आयी और उसे लेकर जहाज पर चली गयी। सभी यात्री चकित होकर उससे अनेक प्रश्न पूछने लगे। वह कहां तक उनका जवाब दे सकती थी। नाविकों से उसे मालूम हुआ कि वह मध्य बर्मा के तट पर थी।

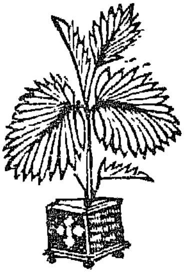
बनदेवी को विदाकर जंगली खिन्न मनसे अपने घर लौटे।

जहाज रंगून पहुंचा। श्यामा वहीं उतर गई, पास में कुछ कीमती पत्थर थे। उनमें से एक को उसने एक जौहरी के हाथ बेच दिया। अगर जौहरी ईमानदार होता तो कई हजार रुपये उस पत्थर के लिये उसे मिलते, पर आज के व्यापार में सच्चाई कहां?

एक दिन सन्ध्या को वह एक पार्क में गयी। वहां एक बूढ़ा अंग्रेज अपनी पुत्री के साथ बैठा था। पिता का नाम मि० जेम्स और पुत्री का नाम कुमारी रोज था। उन दोनों का काम भारत और बर्मा में ईसाई धर्म का प्रचार करना था। कुमारी रोजने कहा—"कलकत्ता से पत्र आया है कि आगामी रविवार को शिमला में हिन्दू पण्डितों के साथ ईसाई पादरियों का शास्त्रार्थ होनेवाला है, उसमें शामिल होनेके लिये आपको निमन्त्रित किया गया है।"

मि० जेम्सने उत्तर दिया—"अच्छा होता कि कल ही हम लोग चल देते; क्योंकि हिन्दुस्तानमें कुछ अधिक कार्य करने हैं।"

कलकत्ते का नाम सुनकर श्यामा को कुछ उत्सुकता हुई। वह कुछ कहना ही चाहती थी कि कुमारी रोजने उसके सम्बन्धमें उससे कई प्रश्न किये। उसकी स्थितिसे अवगत होने पर उसने उसे ईसाई धर्ममें दीक्षित हो जाने को कहा, किन्तु श्यामाने अस्वीकार कर दिया।



२१

प्रभाकी स्थिति अब न तो सुहागिनी-सी थी और न विधवा-सी। दयाशंकर की मृत्यु की कल्पनामें उसने अपने भाल पर कभी सिन्दूर नहीं लगाया। उसके जीवनका सारा आमोद-प्रमोद जाता रहा और अगर सच पूछा जाय तो वियोगके दुःखमें उसका जीवन मृत्यु को आलिङ्गन करने के लिये बड़ी तेजीसे उस ओर बढ़ रहा था। कभी-कभी पिताके आशीर्वाद का स्मरण होने पर उसे अपने पतिसे मिलने की आशा हो आती थी और कभी-कभी उसपर अविश्वास कर रोने लगती थी। अपने अतीत और वर्तमानके जीवन की तुलना कर वह शोक-सागरमें बिलीन हो जाती थी। उसे अपने बचपन की याद आयी। कितने आमोद-प्रमोद और हँसी खुशीमें उसकी बाल्यावस्था व्यतीत हुई थी और उसी अचेतावस्था पर यौवन ने धावा बोला था। अपनी जीवन-वाटिकामें उसने बसन्त देखा, जिससे सौरभ युक्त पुष्प मुस्कुरा उठा। पिताने उसे एक देवताके कर-कमलोंमें समर्पित कर दिया। पर हाय रे भाग्य! एक ऐसा भयानक तूफान आया, जिसके झकोरेसे वह अभागा पुष्प उस देवताके हाथसे गिरकर उससे बहुत दूर हट गया।

इसके बाद प्रभाने दयाशंकरके चरित्र पर विचार किया। उसने अपने मनमें कहा—"वह निस्वार्थ और सरल हृदयका

व्यक्ति था। वह निर्मल चरित्र का पुरुष सेवा की भावना लिये चारों ओर घूमता-फिरता था। वह देवता था। प्रभा उसकी पुजारिन थी। पुजारिन पुष्पांजलि लेकर खड़ी रह गयी। पीछे वह ज्ञान शून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, जिससे हाथके पुष्प बिखर गये। क्या वह भी कोई समय आयेगा जबकि बिखरे हुये फूलों को चुनकर वह हार बनायेगी और उस देवके गलेमें डालेगी।"

उसी समय उसकी बांयी आंख फड़क उठी। शुभ का यह लक्षण जानकर उसको दयाशंकरसे पुनर्मिलन की आशा हो आयी।

२२

कलकत्ता बन्दरगाहमें आकर जब जहाज लगा तब यात्रियों के सामान उतारने के लिये कुली दौड़ पड़े। श्यामाके पास चमड़े का एक बैग था, जिसमें कई कीमती पत्थर थे। उसके साथ में एक महिला थी। उसने उसका बैग अपने हाथमें ले लिया और अपनी छोटी गठरी उसके हाथमें दे दी। श्यामाने कोई आपत्ति नहीं प्रकट की। दोनों साथ ही जहाजसे चलीं। लेकिन; बाहर आने पर वह गायब हो गयी। श्यामाने चारों ओर अपनी नजर दौड़ाई, पर वह कहीं दीख न पड़ी। उसने उसकी खोज भी की, किन्तु उसका पता नहीं चला। अब उसकी समझमें आया कि बात क्या है? उसने पुलिस को इसकी सूचना दी। एक कांस्टेबलने मुस्कुराकर कहा—"अपने भाग्य की प्रशंसा करो कि तुम न गायब हो गयी।" उसने फिर कहा—"आजकल पुरुष और स्त्री दोनों चकमा देनेमें प्रवीण हो गये हैं। ट्रेन, ट्राम, बस और जहाज सब जगह ये धूर्त अपनी करामात दिखलाते हैं। वह महिला कहांसे तुम्हारे साथ आ रही थी?"

श्यामाने कहा—"रंगूनसे ही वह मेरे साथ आ रही थी। रंग-रूप और वेश-भूषामें वह हिन्दुस्तानी थी। वहां एक जौहरी की दुकान पर मैंने उसे देखा था।"

एक पुलिस कर्मचारीके समीप परी-सी सुन्दर युवती को

देखकर लोगोंकी जबर्दस्त भीड़ वहां लग गयी। भले आदमियोंने उसकी दशा पर सहानुभूति प्रकट की, पर गुण्डोंने आंखें मारीं, मर्यादाहीन बातें कहीं और यहां तक कहा कि पत्थरके लिये तुम क्यों चिन्ता करती हो जब कि मणिके समान तुम्हारा सौन्दर्य अंग-अंगमें चमक रहा है। देखना कहीं यह न लुट जाय।

कलकत्तासे वह अपरिचित नारी महानगरीमें जहां भी गयी, गुण्डोंने छायाके समान उसका साथ नहीं छोड़ा। बस, ट्राम और पैदल यात्रामें वे उसके पीछे लगे रहे। उसने अपने मनमें कहा—"अपने को सभ्य कहने वाली दुनिया कितनी नीच है? इससे तो जंगलियोंकी दुनिया कहीं अच्छी है। इसी नगरीमें कई वर्ष पूर्व मैं सनाथिनी थी, किन्तु आज अनाथिनीके सदृश भटक रही हूं। अगर आज मेरी रात्रि यहां कटेगी तो मेरा कल्याण नहीं होगा।"

अन्तमें उसने कलकत्ता छोड़ने का निर्णय किया, पर उसके सामने प्रश्न था कि आखिर वह कहां जाय? सर्व प्रथम उसे माता-पिताका स्मरण आया, "पर कौन-सा मुख लेकर मायके चलाजाय? पतिता न रहने पर भी लोग कुलटा कहेंगे। क्या करूं?" उसने अपने मनमें कहा। कंचनपुर की ओर उसका ध्यान गया। उस गांव का नकशा सामने आते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये। जूही और चमेली अब भी विकराल रूपमें खड़ी थीं। वहांके लोगों की आंखोंमें अब भी उसके प्रति घृणा थी।

निराशा और आशाके बीच डोलती हुई वह ट्रेनमें आकर बैठ गयी। निश्चित समय पर हबड़ासे गाड़ी खुली। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ती गयी, त्यों-त्यों शहरके कोलाहलसे दूर हटती गयी। मार्गमें छोटे बड़े शहर, गांव, नदी, नाला और पहाड़ियों को पार करती हुई ट्रेन अपने लक्षित स्थान की ओर बड़ी तेजी से जा रही थी। स्टेशनों पर कुछ यात्री उतरते थे और कुछ चढ़ते थे। श्यामाने अपने मनमें कहा—"इसी प्रकार यह संसार है। यह मिलन और वियोग का अच्छा चित्रण है।"

वह इन्हीं विचारोंमें निमग्न थी कि रेलवे टिकट परीक्षकने आकर उसका ध्यान भंग किया। श्यामाने कुछ दुखित होकर उत्तर दिया—"मेरे पास टिकट नहीं है।"

श्यामाके अपूर्व सौन्दर्य को वह मिनटों तक देखता रहा। उसकी आंखें श्यामाके चन्द्रानन पर जाकर टिक गयीं। वह चाहता था कि वह इसी प्रकार बैठी रहे और वह उसके रूप-सुधा का पान करता रहे। पर श्यामा को यह स्वीकार नहीं था; उसने दूसरी ओर अपना मुख मोड़ लिया। इसपर उसने कहा—"तब कैसे काम चलेगा।"

श्यामाने अपनी स्थिति प्रकट कर दी। इसपर हँसते हुये उसने कहा—"हां, तुम्हारे पास रुपये पैसे नहीं हैं, किन्तु एक बहुत बड़ा वैभव है और वह है रूप।"

उसकी बातों पर श्यामा को क्रोध चढ़ आया। उसने कहा—"क्या एक टिकट की कीमतमें तुम मेरा सतीत्व खरीदना

चाहते हो ? तुम्हारे समान कितने पतंग इस रूप-दीप की लौ पर आकर भस्म हो गये, पर उन्हें कुछ हाथ नहीं लगा। तुम्हारी भी वही दशा होगी।"

इस रूखे उत्तर पर मुंह बनाते हुये उस टिकट परीक्षकने कहा—"यह टिकट का प्रश्न है ! तुमको मजाक सूझ रहा है। अगर इस अन्धेरी रात्रिमें किसी स्टेशन पर उतार दूं, तो तुम्हें मालूम हो जायेगा कि एक टिकट का कितना बड़ा मूल्य होता है ?'

उसे फटकारते हुये श्यामाने कहा—"दूर हट बदमाश ! मैंने इस जीवनमें बहुत-सी अन्धेरी रातें देखी हैं और उजेले दिन भी देखे हैं। मुझे इसका भय मत दिखला।"

टिकट-परीक्षकने कहा—"व्यर्थ की बातें कर रही हो। समयके अनुसार कार्य करना चाहिये। अगला स्टेशन अब समीप आ रहा है और उस पर भी दिक्कत यह होगी कि अगर इस डब्बामें कोई दूसरा यात्री आ गया तो हमारा और तुम्हारा कोई बस नहीं रह जायेगा। कहो तो मैं तुमको टिकट भी दे दूं और दस पांच रुपये भी।"

श्यामाने क्रोध भरे शब्दोंमें कहा—"तुम बड़े शैतान मालूम पड़ते हो जी ! अगर अब एक मिनट भी यहां ठहरोगे तो मैं खतरे की जञ्जीर खीचूंगी।"

"तुम बड़ी हठीली मालूम पड़ती हो।" कहते हुये टिकट परीक्षकने दरवाजा खोला और दूसरे डब्बे की राह पकड़ी।

चल तो दिया उसने, पर उसका मन श्यामा की रम्य मूर्तिमें रमा रहा। पावदान पर उसके पैर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे और आंखें पीछे की ओर देख रही थीं। उसे अपनी कोई भी सुधि न थी। अचनाक उसका हाथ छूट गया और क्षण में ही वह ट्रेनके नीचे जा गिरा।

खिड़कीसे झांक कर श्यामा यह सारी घटना देख रही थी। कामेश्वरके समान उसका भी काम तमाम होते देखकर उसे प्रसन्नता हुई।

दूसरे दिन चार बजे संध्या को श्यामा अपने रेलवे स्टेशन पर पहुंची और किसी प्रकार आहाते से बाहर हो गयी। यहीं से वह दयाशंकर और प्रभा से अलग हुई थी। उनका स्मरण आते ही उसकी आंखों में आंसू छलक आये। वह कञ्चनपुर की ओर चली। अब गांव में वह कैसे प्रवेश करे? उसके सामने कठिन प्रश्न था। भय और लज्जा दोनों से वह परेशान थी। हृदय कभी आगे बढ़ने को कहता था और कभी पीछे कदम रखने की सलाह देता था। इसी तर्क-वितर्क में काफी रात बीत गयी। दबे पांव उसने गांव में प्रवेश किया और घर के बरामदे में जाकर लेट गयी। सबेरे उसे देखकर लोगों की पूरी भीड़ वहां लग गयी। लोगों से उसे मालूम हुआ कि जूही और चमेली मर चुकी हैं। उनके श्राद्ध में यह मकान पुरोहित को दे दिया गया और सारी सम्पत्ति के स्वामी दौलत-रामके निकट सम्बन्धी कृष्णकान्त हुए। किन्तु; अब कृष्णकान्त

भी न रहे। इसलिये उनका पुत्र विजय कान्त कानूनन सबका मालिक हुआ है।

इसके बाद उसने समाज में शरण पाने की प्रार्थना की, पर शरण देने को कौन कहे, उसे एक क्षण भी गांव में लोग रखना नहीं चाहते थे। अपनी अनुनय विनय के बदले उसे गाली गलौज सुननी पड़ी। बूढ़ी औरतों ने कहा—'यह नारी लज्जा धोकर पी गयी है। इसकी आंखों में पानी नहीं है। कितने घरों को इसने बर्बाद कर दिया। इसपर भी अकड़ कर चलती है।'

उसके कोमल हृदय पर ये शब्द तीर के समान चुभने लगे। वह घायल मृगी के समान वहां से चल पड़ी। पर; इस पर भी वह निष्ठुर समाज उसे कब छोड़ने को था। नवजवान लड़कों ने उसपर कंकड़ पत्थर फेंके। इतना ही नहीं, कुत्तों से उसके सारे अंग नोचवा डाले। वह बाप-बाप चिल्लाती थी और लोग तालियां देकर हँसते थे। गांव से किसी प्रकार वह भाग तो आयी, किन्तु असह्य पीड़ा के कारण आगे न बढ़ सकी, सड़क के किनारे गिरकर कराहने लगी।

यह वही समाज था, जिसमें शरण पाने की आशा से वह समुद्र और वनों को लांघती हुई आयी थी। पर; अन्तमें पश्चाताप के अतिरिक्त उसको कुछ हाथ न लगा।

संयोग से उसी सड़क से विजय कान्त मोटर से आ रहा था। रास्ते पर एक नारी को पड़ी हुई देखकर उसकी मोटर खड़ी

हो गयी। विजयकान्त ने प्रथम अपने ड्राइवर को भेजा और पीछे स्वयं उतर कर उसको देखने गया। श्यामा को पहचान कर अवाक रह गया। घटना से अवगत होने पर उसे दुःख हुआ। अपनी मोटर से उसने समीप के अस्पताल में उसे पहुंचा दिया। दो तीन सप्ताह में वह अच्छी हो गयी।

२४

श्यामा जितनी ही सतृष्ण नजरों से समाज की ओर देखती थी, उतनी ही वह सतायी जाती थी। अपने भविष्य पर सोचकर वह बहुत घबड़ाती थी। उसे अपना संसार अन्धकार मय प्रतीत हो रहा था। विजयकान्त ने उसे अपने यहां शरण अवश्य दी और सहानुभूति भी दिखलायी, पर उसमें स्वार्थकी भावना कामकर रही थी। जब श्यामाको उसके हृदय का भाव मालूम हुआ, तब वह सहम गयी और उसके मन में उसके प्रति घृणा उत्पन्न हुई। परन्तु; एक परास्त सैनिक की भांति वह हिम्मत हार चुकी थी। अब शत्रुओं से लोहा लेने की उसमें शक्ति नहीं रह गयी थी। इस स्थिति में विजयकान्त के समक्ष आत्म समर्पण करने के अलावा उसके सामने कोई उपाय न रह गया था।

खाट पर लेटी हुई अपने जीवन की गुत्थियां सुलझाने में वह व्यस्त थी। रात खत्म होती जा रही थी, पर नींद उसकी आंखों से लाखों कोस दूर थी। वह अपने मन में विचार रही थी—"जो नारी अपने धर्म पर नहीं रहती है, उसे नरक मिलता है और उसके लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। हम विधवाओं के लिये तो नियम और भी कठोर हैं। पर; पुरुष

की ओर आंखें उठाकर देखना ही अपने लिये पाप संग्रह करना है। विजयकान्त का प्रस्ताव अगर मैं स्वीकार कर लेती हूं, तो क्या होगा? लोग हंसेंगे, पतिता कहेंगे और धर्म नष्ट होने पर मुझे और भी कष्ट भोगना पड़ेगा। क्या मेरा ऐसा पतन हो गया कि एक मुट्ठी अन्न और एक हाथ वस्त्रके लिये मैं अपनी आत्मा बेच लूं? आश्रय पाने के प्रलोभन में क्या मैं अपने निष्कलंक जीवनको कलंकित करलूं और संकटों से घबड़ाकर विजयकांत की वासना की शांति के लिये अपना शरीर उसके हाथों में समर्पित कर दूं? शास्त्र पुराण की आज्ञा का उल्लंघन कर अपने कुल के लिये मैं कालिख नहीं बन सकती हूं।"

फिर आगे का पथ निर्णय करने में वह घबड़ा उठी। उसी समय उसके मन में यह भावना उठी, "शास्त्र पुराण पुरुषों के रचे हुये हैं। यह जाति स्वार्थी है। उनमें विधवाओंको बिबाह करने की स्वीकृति नहीं दी गई है, पर पुरुषोंको हजारों शादियां करने की स्वतन्त्रता है। पुरुष लाखों नारियों का सतीत्व लूट ले, कोई अपराध नहीं, पर अपराधी कौन? जिसका सतीत्व लूटा जाय! लूटेरा गजनी ने मन्दिरों को लूटा, डाकू तैमूर ने भारतको लूटा, निर्दयी नादिर ने दिल्ली को लूटा और शास्त्र पुराण ने हमें लूटा।

"मैंने कौन-सा अपराध किया था कि समाज ने मुझे इस अवस्था में लाकर छोड़ा। अपराध तो कामेश्वर और उसके साथियों का था, पर पुरुष समझकर उनको दण्ड नहीं दिया

गया। उनके पाप का प्रायश्चित मुझे करना पड़ रहा है। फिर ऐसे समाज से कौन-सा नाता और सम्बन्ध!" इसी उधेड़ बुन में सबेरा हो गया, वह कुछ निर्णय न कर सकी।

प्रातः हुआ! श्यामा स्नान करने के बाद केश में कंघी करने लगी। विजयकान्त उसके सम्मुख आकर खड़ा हो गया। वह मुस्कुरा उठी। उस सौन्दर्य की मूर्ति को आलिंगन करते हुये विजयकान्त ने पूछा—"प्रिये! तुमने मेरे प्रस्ताव को स्वीकार तो कर लिया न?"

श्यामा ने कहा—"हां।"

उसके "हां" कहते ही विजयकान्त ने उसका मुख चूम लिया।

जिस श्यामा ने समुद्र, तूफान, वर्षा, विकट बन, भयानक पर्वत, हिंसक पशु; जंगली जाति और गुण्डों का सामना किया, उस श्यामा ने आज विजयकान्त के हाथों में अपने को समर्पित कर दिया। पर प्यार की गोद में बैठकर भी उसकी आत्मा वेदना महसूस कर रही थी। उसे मालूम होता था कि उससे कोई कह रहा है—"श्यामा? तुम्हारे जीवन का प्रत्येक पृष्ठ कलंक की कालिख से रंजित हो गया। अब यह दाग छूटने को नहीं है। अपना सतीत्व बेचकर तुमने भूल की है। जब तक तुममें सौंदर्य है और जबतक तुम्हारे यौवन से मीठा रस टपकता है, तबतक विजयकांत तुम्हारी पूजा करेगा, लेकिन जिस दिन ये यौवन और सौंदर्य तुम्हें जवाब दे जायेंगे, उस दिन

विजयकांत भी तुम्हे छोड़ देगा। आज यह भौंरा तुम्हारे रूप पर मोहित है, लेकिन जिस दिन यह कली मुरझा जायेगी, उस दिन यह तुमसे बातें भी नहीं करेगा। उस हालत में तुम्हारी दशा राह पर पड़े हुये सूखे फूल के समान होगी।"

२५

पन्द्रह दिनों से दयाशंकर शिमला में ठहरा हुआ था। पास के रुपये खर्च हो गये। नौकरी चाकरी मिलने की कहीं कोई आशा नजर नहीं आ रही थी। नित्य अखबारों में काम खाली का वह विज्ञापन पढ़ता था, पर समस्या के समाधान का कोई उपाय नहीं दीख पड़ता, या बेकारी की समस्या के समक्ष मानव-सेवा की लगन धीरे-धीरे विलीन-सी हो रही थी। पर अपने सिद्धांत पर अटल रहकर उसका परित्याग करना नहीं चाहता था।

संध्याके समय दयाशंकर चट्टान पर बैठा हुआ भारतीयों और यूरोपियनों के जीवन-स्तर की तुलना कर मन ही मन दुःख अनुभव कर रहा था। वह सोचता था—'सात समुद्र पार से आने वाली यह गोरी जाति कितने ऐशो आराम में अपनी जिन्दगी बिता रही है और इधर हम भारतीयों के लिये सुख स्वप्न हो गया है। जिस दिन हमें भरभेट भोजन मिल जाता है, उस दिन हम अपना भाग्य समझते हैं। हमारी यह कैसी दयनीय स्थिति है। इसी कारण नाना प्रकार के रोगों का हमें शिकार होना पड़ता है। अंग्रेजों ने हमारे देश को कंगाल बना डाला है। अगर उनके विरुद्ध आवाज उठायी जाती है, तो हम

राजद्रोही घोषित किये जाते हैं और दण्ड पाते हैं। इस शासन में सब तरह से हमारा पतन हो रहा है।'

दयाशंकर से कुछ दूरी पर एक बूढ़ा अंग्रेज एक गोरी युवती के साथ भारत में ईसाई धर्म के प्रचार करने पर बातें कर रहा था। उसकी अवस्था ६०-६५ वर्ष की थी। उसकी ओर देखकर दयाशंकर ने अपने मनमें सोचा—'यह अंग्रेज तो बूढ़ा हो चला, परन्तु इसके शरीर में रक्त है। इसमें कितनी स्फूर्ती है। लेकिन इधर भारत में ? यहां तो ६० वर्ष जीवन की अन्तिम अवधि है। अगर अपने दुर्दिन को गिनते हुये भारतीय जीवित रह गये तो इस अवस्था में बिना डंडा के चलना कठिन है। बूढ़ों की बातें तो जाने दीजिये, यहां तो तीस-पैंतीस वर्षके युवकोंकी दशा भी दयनीय रहती है। बिना चश्मा के उनका काम ही नहीं चलता है।

"वह युवती कितनी सुन्दर है, उसका स्वास्थ्य कितना अच्छा है और उसके मुखड़े पर कैसी कांति है ? इस बीस इकीस वर्ष की नारी के साथ इसका यौवन किस प्रकार अठखेलियां कर रहा है ? इसके वचन मधुर और वाणी आकर्ष हैं। इसके विपरित भारतीय नारियों की स्थिति है। इस अवस्था में आते आते वे दो तीन बच्चों की मां बन बैठती हैं। उनका चेहरा फीका पड़ जाता है, कान्ति मलिन हो जाती है और स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। उनकी शिक्षा दीक्षा का क्या पूछना ? उन्हें अक्षर का ज्ञान कराना तो माता-पिताकी दृष्टि में व्यर्थ की चीज समझी जाती है।"

दयाशंकरने देखा कि वह बूढ़ा अंग्रेज उसकी ओर देख रहा था। वह उठकर उसके समीप गया, हाथ मिलाया और परिचय पूछा। उसको ज्ञात हुआ—"उस बूढ़े का नाम जेम्स है और वह युवती उसकी पुत्री कुमारी रोज है। इसी सप्ताह दोनों रंगूनसे शिमला आये है।" इसके पहले भी दयाशंकरने इन दोनों का नाम सुना था। भारतीयों को ईसाई बनाने में अन्य ईसाई प्रचारकोंसे ये बाजी मार रहे थे। कुमारी रोजका प्रभाव पढ़े-लिखे युवकों पर अधिक पड़ता था और उसके प्रभावमें पड़कर कितने युवकोंने अपने धर्म परिवर्तन कर डाले। पिता-पुत्री का अधिकतर दौरा ग्रामीण क्षेत्रोंमें दीन-हीन अवस्था की जनता के बीच होता था। सीधे-सादे लोग कुछ आर्थिक प्रलोभनमें आकर ईसाई धर्ममें दीक्षित हो जाते थे।

इस परिचय का यह परिणाम निकला कि दयाशंकर मिशनरी स्कूलमें अध्यापक नियुक्त हो गया।

२५

विजय कान्तके यहां उत्सव मनया जा रहा था। लाल, पीले और हरे बल्वोंके बीच बिजली का प्रकाश नाना प्रकारके रूपमें प्रकट होकर मोहक दृश्य उपस्थित कर रहा था। फूल की क्यारियोंमें विद्युतके पम्पसे जल का फुहरा निकल कर अपूर्व शोभा दे रहा था।

शुभ मुहूर्तके समय श्यामा की नवजात पुत्री को देखने के लिये विजयकान्तके मित्र गण जुट पड़े। किसीने उपहारके रूप में उसको चांदीके सौ पचास रुपये दिये, किसीने सोने की चुड़ियां और किसीने जापानी, जर्मनी और विलायती खिलौने दिये। पर उस अबोध बालिका की दृष्टिमें सब एक समान थे, सब तुच्छ और किसीकी कोई कीमत नहीं थी। उसे क्या मालूम था कि वे उपहार उसे क्यों मिल रहे थे?

जब अतिथियोंके मुखसे श्यामा यह सुनती थी—"यह कन्या अपनी मां से भी बढ़कर रूपवती होगी" तब प्रसन्न होकर मुस्कुरा उठती थी। उस समय उसे यह ज्ञान नहीं होता था कि आखिर उसके सौन्दर्यने ही तो उसको इस स्थितिमें लाकर छोड़ा है। फिर उसपर गर्व क्या? लेकिन जब मनुष्य का पतन

होता है तब उसका हृदय विवेक हीन हो जाता है। उस स्थितिमें वह जो कुछ करता है, वह ठीक ही जंचता है।

इसके बाद नाच-गान आरम्भ हुआ। पुरुषोंके महफिलमें वेश्या का नृत्य होने लगा। उस कंठकोकिलाके मधुर स्वरसे हृदयमें गुदगुदी पैदा हो रही थी और जिधर उसकी नजर जाती थी उसी ओर लोग आहत हो जाते थे। जिनके सामने वह मुस्कुरा देती थी, वे अपना जन्म सफल समझते थे। उसके नृत्य और संगीत की कला पर सब मुग्ध थे। उसके सामने रुपये और नोटों की वर्षा होने लगी। विजयकान्तके समीप बैठकर वह गाने लगी :—

यौवन है मजेदार सनम ...।

महफिल गूंज उठा। चारों ओर लोग वाह-वाह करने लगे और मस्तीमें आकर झूमने लगे। विजयकान्त तो आनन्दमें विभोर हो गया। वह इतना प्रसन्न हुआ कि अपने गलेसे हार निकालकर उसके गलेमें पहना दिया। उस समय तालियां बज उठीं।

श्यामा खिड़कीसे यह दृश्य देख रही थी। उसे ऐसा लगा मानो वह वेश्या उससे विजयकान्तको छीन रही है। उसने उसकी ओर घृणा की दृष्टिसे देखा और मन ही मन उसको कोसती हुयी कहने लगी—"पुरुषों की भरी सभामें इसे नाचने-गाने और हाव-भाव बनाने में लज्जा नहीं आ रही है! कितनी निर्लज्जताके साथ स्वयं अपने ही हाथोंसे अपने वक्षस्थल

की ओर संकेत कर वह पुरुषों को आकर्षित कर रही है और पुरुष भी कैसे निर्लज्ज हैं, जो भरी सभामें किसी ललना से नृत्य कराकर आनन्द लूट रहे हैं। वे यह नहीं सोचते कि यह अबला उन्हींके पापों का शिकार होकर आज नारकीय जीवन व्यतीत कर रही है। कैसा विचित्र यह पुरुष समाज है? जिसने इसे भ्रष्ट किया, उसीने इसका परित्याग किया और वही आज इसके अधरामृत पान करने के लिये व्यग्र हो रहा है? इसकी एक मुस्कान पर वह प्राण देने को तैयार है। भला वह यह नहीं सोचता है कि उसीके पापका प्रायश्चित यह अबला कर रही है।"

श्यामाने पुनः अपने मनमें कहा—"अगर विजयकान्तने मुझको अपनी अर्द्धाङ्गनी स्वीकार नहीं किया होता तो आज मेरी भी यही दशा होती। इन पापियोंके समक्ष मुझे भी यही निर्लज्जता धारण करनी होती और अपना हाव-भाव दिखला कर इन्हें आकर्षित करने के लिये वाध्य होना पड़ता। प्रेम का स्वांग रच कर इनसे धन ठगना होता। फिर भी मुझमें और इस वेश्यामें अन्तर ही क्या है? थोड़ा ही तो अन्तर है। अपनी जीविका चलाने के लिये इसे नित्य सैकड़ों पापियों की वासना की तृप्ति करनी होती है और मुझे अपना पेट पालने के लिये एक विषयी की कामना की पूर्ति करनी होती है। इसका दरवाजा सभी पुरुषोंके लिये खुला है और मेरा दरवाजा केवल विजयकान्तके लिये खुला है। स्वयं मेरी आत्मा

मुझसे विद्रोह कर रही है और कह रही है कि तुम भी एक वेश्या हो।"

अर्द्ध रात्रिके बाद महफिल समाप्त हुआ। आमन्त्रित व्यक्ति अपने-अपने घर गये। वेश्याने विजयकान्तको सलाम बजाया। उसने अपनी जेबसे सौ-सौ रुपये के पांच नोट निकाल कर उसके हाथमें दिये और अगल-बगल झांक कर उसके सुन्दर कपोलों का चूम्बन किया। वह मुस्कुरा उठी और दूसरे दिन अपने यहां आनेके लिये उसको आमन्त्रित करती गयी।

सारी रात जगे रहने के कारण विजयकान्त काफी देर तक सोता रहा। लगभग दस बजे दिनमें उसकी नींद टूटी। उसके बाद स्नानादि करते-धरते बारह बज गये। बड़ी उत्सुकता के साथ सूर्यास्त की वह प्रतीक्षा करने लगा। आखिर सन्ध्या भी आयी। अब वह उस वेश्यासे मिलने चला। आकाशमें तारे और नगरमें दीपक जगमगा रहे थे। विजयकान्त की मोटर वेश्याओंके बाजारमें पहुंची। उसने अपने मनमें कहा— "यह वही स्थान है, जहां समाज की परित्यक्ता महिलाएं अपने सौन्दर्य बेचने के लिये निवास करती हैं और अपनी वासना की तृप्तिके लिये समाज की आंखोंमें धूल झोंक कर कामी पुरुष यहां पहुंचते हैं तथा चान्दीके चन्द टुकड़े फेंककर उनके सतीत्व लूटते हैं।"

वेश्याओंके अंगसे ईत्र और सेंट की सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी। सड़क और गलियोंमें रूपके पुजारियों की भीड़ें लगी

थीं। पुरुषों की आंखें अपने लिये सुन्दरसे सुन्दर परियों की तलाशमें व्यस्त थीं। वहां भी घटिया-बढ़ियाका प्रश्न था। वहां भी अमीरों की बाजी लगती थी और कम पैसे वाले दिल मसोस कर रह जाते थे।

विजयकान्त की मोटर ज्यों-ज्यों उस बाजारके अन्दरमें प्रवेश करती गयी त्यों-त्यों उसकी आंखोंसे सुन्दरसे सुन्दर मूर्तियां गुजरती गयीं। उसको यह निर्णय करनेमें कठिनाई हो रही थी कि आखिर अत्यन्त रूपवती का प्रमाण पत्र किसको दिया जाय? पथ की दोनों ओरसे तबला व सारंगी की आवाज, गणिकाओंके संगीतके मधुर स्वर और हृदयमें उथल-पुथल मचा देने वाली उनकी हँसीके बीचसे मोटर का आगे बढ़ना कठिन हो रहा था। अन्तमें वह मोटर एक मकानके सामने जाकर लगी। विजयकान्तके स्वागतके लिये एक आदमी पहले से खड़ा था। वह उसे दो तल्ले पर ले गया। उसको देखते ही नजूमी बाई मुस्कुरा उठी और उसने कहा—"मैं तो सोच रही थी कि शायद आप मेरे निमन्त्रण को भूल गये।"

विजयकान्तने हँस कर उत्तर दिया—"तुम्हारा निमन्त्रण भूल सकता हूं, लेकिन तुम्हें नहीं भूल सकता हूं।"

उत्तर सुनकर नजूमी बाईने कहा "मेरी किस्मत।"

नजूमी बाईके मुखड़े पर अभी भी भोलापन की झलक कायम थी। उसको देखने से मालूम होता था कि उस नरक कुण्डमें हाल ही उसने प्रवेश किया है। अपने जीवन-पृष्ठों पर

नजर जाते ही उसे हँसी आती थी, अफसोस होता था और अन्तमें दो बून्द आंसू भी गिर पड़ते थे। वह स्वयं कहती थी कि वह किसी उच्च घराने की ललना थी, उसका चरित्र भी अच्छा था; लेकिन अपने पतिके चरित्रहीन होने से वह भी चरित्र हीन हो गयी और अब तो कहीं की नहीं रही। इससे अधिक वह अपना परिचय देना नहीं चाहती थी और अधिक हठ करने पर वादा करती थी कि समय आने पर वह अपनी पूरी जीवनी अपने प्रेमियोंके समक्ष रख देगी। इसके लिये अधीर होने की आवश्यकता नहीं।

नजूमी बाईके सत्कारसे विजयकान्त प्रसन्न हो उठा। वह तो पहले ही से उसके प्रेम की नशामें मस्त था और शराब की बोतलने तो उसपर पूरा रंग चढ़ा दिया। दो नशों का मारसे वह दीवाना बन गया। अपनी जेब की सारी सम्पत्ति उसने नजूमी बाईके चरणों पर अर्पित कर दी और उसके बदलेमें उसका सौन्दर्य लूटा।

२६

प्रभाके हृदयमें एक प्रकार की विरक्ति पैदा हो गयी। संसार में उसके लिये कोई आकर्षण नहीं रहा। उसके मनमें भी सेवा की भावना जागृत हुई। स्कूलमें अध्यापन कार्यसे जो समय बचता वह उसे मानव सेवामें लगाती थी। ग्रामोंमें घूम कर जनतामें ग्रामोद्योग का प्रचार करती, स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम बतलाती और गन्दी आदतोंसे दूर रहने का आग्रह करती। रोगियों की सेवा करना भी उसने अपने लिये एक कार्यक्रम बना लिया था।

उसकी सेवा, रहन-सहन और चरित्र देख कर लोगों का यह भ्रम दूर हो गया कि स्कूल और कालेजोंमें लड़कियों को भेजने से कुल या समाज की प्रतिष्ठा पर आघात पहुंचने की सम्भावना रहती है। प्रभा का प्रभाव महिला समाज और विशेष कर नवयुवतियों पर अधिक पड़ा। धीरे-धीरे वे भी परदा प्रथा भंग करने लगी।

प्रभा जिस क्षेत्र में काम करती थी, उस क्षेत्रके ग्राम प्रत्येक दृष्टिकोणसे उसके उद्योगके कारण आदर्श ग्राम बनते जा रहे थे। गांवोंमें अच्छी सफाई रहती थी; शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान गया।

इतना होने पर भी संकुचित विचारके लोग प्रभाके विरोधी थे। वे प्रगतिके पथ पर समाज का अग्रसर होना पसन्द नहीं करते थे। उनका कहना था कि ग्रामीण स्त्रियां भी प्रभाके समान चारों ओर भाषण देती फिरेंगी और पर्दा प्रथा उठा देंगी। हरिजनोंके प्रति उसकी सद्भावना देख कर वे और भी चिढ़ते थे। उनका कहना था कि अगर समाजमें शूद्रों को भी क्षत्रिय-ब्राह्मणके समान अधिकार मिल जाय तो फिर क्षत्रियों और ब्राह्मणों की कौन-सी इज्जत रहेगी! लेकिन उनकी संकीर्णता का प्रभाव नयी रोशनीके लोगों पर नहीं पड़ा। इससे प्रभा को अपना कार्य जारी रखने में सहायता प्राप्त हुई। प्रान्तीय सरकारके शिक्षा विभाग को जब इसकी खबर मिली तब उसने प्रभाकी सहायता की और ग्राम विकास योजना कोषसे उसकी काफी मदद दी।

सेवाके कार्यमें लगे रहने और वियोग की लम्बी अवधि बीतने पर भी प्रभाके मस्तिष्कसे दयाशंकर की स्मृति गयी नहीं थी और उसके हृदयमें सदा दयाशंकर की सूरत विराज रही थी। कार्योंसे अवकाश मिलने पर उस का स्मरण आते ही वह विकल हो उठती थी। इस से वह सर्वदा खिन्न और उदास रहती थी। धीरे-धीरे उसका स्वास्थ्य भी गिर रहा था, पर वह इसकी चिन्ता नहीं करती थी।

२७

विजयकान्त नित्य सन्ध्या को घरसे निकल पड़ता था और दूसरे दिन प्रातःकाल आता था। इसपर श्यामाको संदेह हुआ और उसने पता लगाना आरम्भ किया कि, वह कहां गायब रहता है। आखिर रहस्य प्रकट होकर ही रहा। उसको किसीने कहा—"आजकल विजयकान्त नजूमी बाईके प्रेममें रंगा हुआ है। उसके लिये उसने मकान भी खरीदा है।" यह सुनकर श्यामा को अति सदमा पहुंचा। उसने विजयकान्त को नजूमीके यहां आने-जाने से रोकने की चेष्टा की, पर असफल रही। एक दिन विजयकान्तने उसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा—"मैं कुछ करूं, उसमें हस्तक्षेप करने का तुमको कोई अधिकार नहीं है। तुमको मालूम होना चाहिये कि, नजूमीके कारण नहीं, बल्कि तुम्हारे कारण मेरी कितनी बदनामी हुई है। इसी भागलपुर शहरमें चारों ओर मेरी निंदा हो रही है। मेरे धर्म-कर्म सब नष्ट हो चुके। समाजसे मैं बहिष्कृत हुआ और लोगोंकी नजरोंमें गिर गया हूं। अगर तुम बुरा न मानो तो मैं कह सकता हूं कि, अब तुम्हारा भार उठाने में असमर्थ हूं। कृपया मेरी जान छोड़ दो और अपना प्रबन्ध आप करो। हम दोनों का कोई वैवाहिक सम्बन्ध भी तो नहीं है कि मैं तुमको रखनेको बाध्य हूं।

आंखों का एक नशा था, जिसके चक्करमें आकर मैंने तुम्हें स्वीकार किया था, लेकिन नशा नशा ही होता है, नशा उतरते ही उन्हीं आंखोंमें तुम्हारी कोई कीमत नहीं रही। इसलिये अब से तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध विच्छेद होता है।"

जिस समय विजयकान्त श्यामासे सम्बन्ध बिच्छेद करने की बातें कर रहा था, उस समय उसके भविष्य पर उसने थोड़ा भी ख्याल नहीं किया और न सोचा कि, जिस नारीकी सम्पत्ति और सतीत्व दोनों का उसने अपहरण किया है, वह नारी उससे अलग होकर अब किस स्थितिमें रहेगी? "विश्वासघातमें पाप है।" शायद इसे माननेको उसकी आत्मा तैयार नहीं थी।

श्यामा विजयकान्त की बातें बहुत गौरसे सुन रही थी। उसके मुखसे "सम्बन्ध विच्छेद" सुन कर वह अवाक रह गयी। अगर आकाशसे उसके वक्षस्थल पर वज्रपात होता तो वह सह लेती, यदि तीर उसके कोमल कलेजे पर आघात करता तो वह उसे भी सह लेती, किन्तु विजयकान्तके शब्दों का प्रहार सहने में वह असमर्थ हो रही थी। उसे क्या मालूम था कि, विजयकान्त रूप का कीड़ा था, सौन्दर्य का उपासक था; पर प्रेम का पुजारी नहीं। उसे अब ज्ञात हुआ कि, उसके प्रेममें स्वार्थ था, उसकी पूर्ति होने पर उसने उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

जिजयकान्त श्यामासे कुछ उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था, लेकिन वह मूर्तिवत् वहीं खड़ी रही। उसकी आंखोंमें आंसू की

बून्दे नहीं दिखाई पड़ीं। हृदय सरोवर बांध तोड़ना चाहता था, लेकिन "सम्बन्ध विच्छेद" शब्द पहाड़ बन कर उस सरोवरके दरवाजे पर बैठा हुआ था, इससे बांध नहीं टूट सका। श्यामा के मस्तिष्कमें चक्कर आने लगा। उसके पैरके नीचे की भूमि खिसकने लगी। कुछ देरके बाद कटे हुये वृक्षकेसमान वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसकी चेतना शक्ति नष्ट हो गयी और हृदय की गति बन्द हो गयी। विजयकान्त ने समझा कि श्यामाने संसारसे विदा मांग ली और दुःख-विपत्तिके जाल को फाड़ कर दुनियां से चली गयी।

शहरसे बहुत दूर लगभग पन्द्रह मील की दूरी पर मोटरसे श्यामा का मृत शरीर श्मशानमें पहुंचाया गया। चिता बनाकर उसपर उसका मृत शरीर रखा गया और उसमें आग लगाने की तैयारी होने लगी। उसी समय श्यामा की सांसें मन्द गति में चलने लगीं। विजयकान्त घबड़ा उठा। उसने नौकरों को उसको शीघ्र जला देने का आदेश दिया। चितामें कभी आग धरती थी और कभी बुझ जाती थी। यह वही शरीर था, जिसकी पूजा जंगलियोंने की थी, लेकिन अब वह जीवित जलाया जा रहा था।

चितासे कुछ दूरी पर एक झोपड़ी थी। उसमें एक साधु बैठा हुआ यह सारा काण्ड देख रहा था। लाख कोशिश की जाती थी, पर अग्नि प्रज्वलित नहीं हो रही थी। विजयकान्त भयसे कांप रहा था। इतने ही में वह साधु बाहर आया।

उसके केश बढ़े हुये थे, उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी और हाथमें एक चिमटा था। विजयकान्तने अनुमान किया कि; वह औघड़ है, जो मुर्दाके मांसके लिये यहां आया है। वह उसकी ओर देखने लगा। उसकी चिन्ता और भी बढ़ गयी। साधुने उससे कहा—"बच्चा! तुम उदास क्यों हो? क्या यह तुम्हारी धर्म पत्नी थी? अब शोक करने से क्या होगा? यह तो संसार है, जो आता है, वह जाता है; नश्वर शरीर स्थायी नहीं होता है।"

इसी बीच चितासे लम्बी सांस निकली। विजयकान्त भयभीत हो उठा। उसका सारा शरीर कांप उठा। साधुने उससे कहा—"तुम्हारा भाग्य कितना अच्छा है? चिता पर आकर तुम्हारी पत्नीके प्राण लौट आये।"

इन शब्दोंसे वह और भी घबड़ा उठा। पर होश संभालते हुये उसने साधुसे उस शरीर की परीक्षा करने का अनुरोध किया। साधु चिताके समीप गया और इधर विजयकान्त अपने नौकर समेत मोटरसे नौ दो ग्यारह हो गया। वह साधु इसका रहस्य नहीं समझ सका। खैर उसने मृत शरीर की परीक्षा की। उसकी नाड़ी चल रही थी और उसकी धमनियों में प्राण मालूम होते थे। उसने गंगासे पानी लाया और उसके मुखमें डाला। इससे अमृतके समान उसे लाभ पहुंचा। वह नारी उठ बैठी। अपने सामने विशाल काय मूर्ति को देख कर वह डर गयी। उसने चारों ओर अपनी आंखें दौड़ाई, लेकिन

उस साधु और मुर्दों के अतिरिक्त उसे कुछ नजर नहीं आया। नरमुण्डों का ढेर, बिखड़ी हुई अस्थियां और कुत्तों तथा श्रृगालों की चिल्लाहट व रुदनसे उसके लौटे हुये प्राण सूखने लगे। अपने को वहां पाकर वह आश्चर्यमें पड़ गयी। उसने अपने मनमें विचार किया—"क्या मैं स्वप्न की अवस्थामें हूं या वास्तवमें श्मशान में हूं।"

साधुके आदेश पर श्यामा उसके साथ गयी और झोपड़ीके एक कोनेमें बैठ गयी। उसके आभापूर्ण बदनसे वह कुटिया दैदीप्यमान हो रही थी। उसे देखकर मालूम होता था कि, आकाश का चन्द्रमा राहुके भयसे भाग कर यहां छिपा हुआ है। उस साधुने अपने मनमें कहा—"यह इस लोक की मानवी है या इन्द्र अखाड़े की अप्सरा या देव कन्या? जो भ्रमण करने के लिये इस लोकमें आ गयी है।"

पुनः उनके मनमें यह धारणा हुयी—"शायद सुन्दरता स्वयं नारी का रूप धारण कर मेरी तपस्या भंग करने के ध्येयसे इस आश्रममें आ गयी है। आगके साथ तृण नहीं रह सकता है; स्पर्श करते ही वह भस्म हो जाता है।"

साधुके आदेश पर श्यामा उस झोपड़ीसे बाहर आकर बैठ गयी।

साधु को उस समय सहसा प्रभा का स्मरण हो आया। पुत्रीके स्मृतिने पिता को विह्वल कर दिया। उसने उसी समय प्रभाके कुछ पत्र पढ़े, जिनमें उसकी करुण कहानियां अंकित थीं।

उन पत्रोंमें कहीं पिताके वैराग्यसे गृहस्थाश्रमके नष्ट होनेकी चर्चा थी, कहीं माता की आत्महत्यासे मायके से सम्बन्ध विच्छेद होने का दुःख पूर्ण वर्णन था, कहीं-कहीं श्यामाके मिलन और वियोग तथा उस अभागिनी की परवशता का चित्र खींचा गया था और कहीं पर उसने अपनी दीन-हीन अवस्था का उल्लेख किया था। एक पत्रमें उसने लिखा था कि, यह संसार मुझे बिल्कुल उदासीन दीख पड़ रहा है। माता-पिता और पति से अलग होने के बाद मुझे ऐसा मालूम पड़ रहा है, मानो लूसे में झुलस रही हूं। कभी-कभी मैं महसूस करती हूं कि किसी अथाह समुद्रमें मैं डूब रही हूं और त्राण पाने के लिये जब हाथ बढ़ाती हूं तो जल तरंगों को छोड़कर और कुछ हाथ नहीं आता है। इस स्थितिमें मैं हतोत्साहित हो जाती हूं। कभी-कभी इच्छा होती है कि आप ही के समान मैं भी जोग रमाकर किसी पहाड़ की कन्दरामें बैठूं और तपस्यामें अपना जीवन विलीन कर दूं। जब इस संसार में मेरा कोई है ही नहीं तब किसके लिये मैं दुःख भोगती रहूं। इसमें न तो माता-पिता का दोष है और न उनका दोष है, सब भाग्य का दोष है। मनुष्य कुछ और सोचता है और ईश्वर कुछ और सोचता है। फिर भी इस असार संसारमें किसका कौन है ? सब माया का जाल है, जिसमें प्राणी फंस कर अपना अस्तित्व नष्ट कर देता है। मैं इस निर्णय पर पहुंची हूं कि न कोई मेरा है और न मैं किसी की हूं।"

इधर श्यामा शान्त संसार की ओर देख रही थी। चारों ओर केवल शान्ति ही शान्ति विराज रही थी। माता गंगा कल-कल गान करती हुई समुद्रसे मिलने के लिये तेज गतिमें जा रही थी। बीच-बीचमें मछली, मगर आदि जलके जीव-जन्तुओं की उछल-कूदसे शान्ति भंग हो जाती थी, जिससे बरबश उसका ध्यान उस ओर खींच जाता था। गंगाके स्वच्छ जल पर तारों की छाया श्वेत चादर पर नीले और सफेद बिन्दीके समान शोभा पा रही थीं।

श्यामाने अपने मनमें कहा—"दुःख-सुख भुला कर चित्त किस प्रकार प्रकृति के सौन्दर्य के अध्ययन में विलीन हो गया है।"

सौन्दर्य का ध्यान आते ही उसका मन खिन्न हो गया। उसके मनमें भावना उठी—"सौन्दर्य कैसी बुरी चीज है। इसी सौन्दर्यके कारण मेरी यह दशा हुई। इसी सौन्दर्य को लेकर मुझपर कैसे-कैसे अमानुषिक अत्याचार हुये हैं। बिजयकान्त का हृदय कामेश्वरसे भी कठोर है। अपनी निर्दयता का उसने कैसा जघन्य परिचय दिया है? स्वार्थ की बलि-वेदी पर प्रेमका अक्षत रख कर उसने मेरा बलिदान किया है। एक सरल हृदय को अमृतके बहाने उसने बिष पिलाया है। जिस बात की मुझे आशंका थी, आखिर वह घट कर ही रही। उसने मेरे साथ तो ऐसा व्यवहार किया; मेरी नन्ही-सी बच्चीके साथ क्या करेगा? अब मेरे सामने इस अधम जीवनके निर्वाह की

समस्या है; कौन-सा पथ पकड़ूं? समझमें नहीं आ रहा है। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है। आज इस विपत्तिमें मेरा कोई सहारा नहीं है। हाय रे संसार और हाय रे मेरा भाग्य! अब मैं किसका आश्रय लूं।"

इसी चिन्ता और उलझनमें उसकी रात समाप्त होती जा रही थी। पक्षियोंके कलरव और तारोंके मुरझा जानेसे उसने अनुमान किया कि अब रात थोड़ी है और सम्भव है कि एक-डेढ़ घण्टेमें भगवान सूर्यके दर्शन भी हो जांय; इसलिये उसने वहांसे प्रस्थान करना ही उत्तम समझा। उसने कुटियामें झांक कर देखा, वह साधु अभी सन्ध्या वन्दनमें व्यस्त था। ध्यान भंग न हो, इसलिये उसने मन ही मन उसे प्रणाम किया और वहांसे प्रस्थान किया।

श्मशानसे बाहर आकर कुछ लोगोंसे उसने उस साधु का परिचय पूछा। उसे मालूम हुआ कि उस साधु का नाम जयशंकर बाबू है। कञ्चनपुरके दौलत राम की दाह-क्रियाने उनके मनमें विरक्ति उत्पन्न कर दी, जिससे उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन का परित्याग कर वैराग्य ले लिया है।

"दौलत राम" का नाम सुनते ही उसकी आंखोंमें आंसू भर आये। फिर उसने उस गांव का नाम पूछा। उसे उत्तर मिला—"यही प्रेम नगर है और सामने वकील साहब के मकान का खण्डहर है, जिसमें आज कुत्ते और श्रृगाल रोते हैं।"

उस समय उसे प्रभाका स्मरण हो आया, लेकिन संकोच वश उसने उसके सम्बन्धमें नहीं पूछा और अपने को छिपाने के ख्यालसे अपना रास्ता लिया।

उस साधुके प्रति उसके हृदय में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने सोचा—"अगर उस साधुके स्थान पर दूसरा पुरुप होता तो मेरी कौन-सी दशा होती? वकील साहबने सच्चे रूपमें वैराग्य लिया है। मैं उनके चरणों पर नतमस्तक हूं। भला ऐसे व्यक्ति की पुत्री होकर प्रभा क्यों न आदर्श नारी हो?"

सन्ध्या समय श्यामा भागलपुर पहुंची। विजयकान्त उस समय नजूमीके यहां जाने की तैयारी कर रहा था। श्यामा को देखते ही वह भयभीत और आश्चर्यचकित हो उठा। उसने बिल्कुल डर कर पूछा—"तुम यहां कैसे आयी?"

श्यामाने उत्तर दिया—"भूत बन कर और इसलिये कि एक शैतानसे प्रतिशोध लूं। तुमने मुझे जीवित चिता पर रख दिया था, और यह विश्वास रखो कि मैं तुम्हारी जान नहीं छोड़ सकती हूं।"

विजयकान्तके प्राण सूख रहे थे। उसे भय हो रहा था कि कहीं पुलिस को न इसकी खबर मिल जाय। सारे दिन जिस बात की चिन्ता उसे सता रही थी, आखिर वही होकर रही। फिर भी ढाढ़स बांध कर उसने कहा—"मुझे भय मत दिखलाओ। तुम्हारा परित्याग करते हुये मुझे दुःख अवश्य हुआ है, लेकिन इसके लिये मैं दोषी नहीं हूं,' बल्कि तुम्हारा

चरित्र दोषी है। तुम्हारे चरित्र पर सन्देह होने के कारण ही मैंने ऐसा किया है। अगर....।"

बीच में ही श्यामा बोल उठी—"मेरे चरित्र पर तुम्हें संदेह क्यों न हो? क्योंकि तुमने ही तो मुझे भ्रष्ट किया है। तुम्हें बोलते हुये शर्म नहीं आती है?"

विजयकान्त—"मैंने तुमको कैसे भ्रष्ट किया? मैंने तो तुम्हारी रक्षा की।"

उसकी बातों पर श्यामा की आंखोंसे अंगार निकलने लगे। उसने कहा—"फिर तुम वही बात बोल रहे हो। तुमने मेरी भलाई क्या की? अगर मैं उस दिन सड़क पर कुत्ते बिल्ली की मौत मर जाती, तो मेरे लिये उत्तम होता, लेकिन राह दिखाने के बहाने एक डाकूके समान जंगलमें लेजाकर तुमने मुझे लूटा है, क्या इसे दया या सहानुभूति कह सकते हैं? मेरे जीवन का इतिहास विशाल है, जिसका प्रत्येक पृष्ट करुणापूर्ण कहानियोंसे भरा है, लेकिन तुम्हारे हाथमें आनेके पूर्व इसके किसी भी पृष्ट पर कलंक की रेखा नहीं लगी थी। तुमने केवल इस जीवन को बरबाद ही नहीं किया, बल्कि मेरा लोक और परलोक दोनों नष्ट कर दिये। क्या यह बात नहीं है कि, इस अभागिनी को नरकके कुण्डमें ढकेल कर तुम भागे जा रहे हो? तुम मेरी कठिनाइयोंका अनुमान नहीं कर रहे हो? तुम सब समझ रहे हो, लेकिन एक वेश्याके रूपके पीछे आज तुम मेरी हत्या कर रहे हो? अब किसी को भी मैं

अपने आगे-पीछे नहीं देख रही हूं। अपना बिरान बन गया और बिरान तो बिरान ही है। आज मुझ हतभागिनीके लिये कोई सहारा नहीं है और यह संसार मुझे निर्दयी और कठोर मालूम हो रहा है। यह मुझे निगलनेके लिये मुँह फैलाय खड़ा है। मेरे सामने जीवन-निर्वाह की समस्या है, मैं इसके लिये चिन्तित हूं। मुझे केवल एक रोटी का टुकड़ा और एक हाथ वस्त्र चाहिये। तुमसे मैं इसी की मांग करती हूं, मेरे ऊपर दया करो, मेरी सम्पत्ति भी तो तुम्हीं को मिली है। इस ख़्यालसे भी तो मेरे जीवन का निर्वाह तुम्हें करना चाहिये।"

विजयकान्तने रूखे शब्दोंमें उत्तर दिया—"तुम्हारी सम्पत्ति कैसी? घरसे निकली हुई स्त्री का भी कहीं सम्पत्ति पर अधिकार होता है? जूही और चमेलीने अपने जीवनमें ही पिताजी के नामसे सारी सम्पत्ति लिख दी थी; नया काण्ड खड़ा मत करो। मैं तुमको देखना नहीं चाहता हूं। तुम एक रोटी की भीख क्यों मांग रही हो? अभी तो तुम्हरा यौवन और सौन्दर्य दोनों कायम है, फिर तुम अपने को बरबाद कैसे समझ रही हो? तुम पर मर मिटने वाले तो अभी लाखों मिलेंगे।"

उसकी बातों पर श्यामा रो पड़ी। उसकी विकलता पर विजयकान्तने कुछ ध्यान नहीं दिया। नौकर को अलग लेजाकर कुछ आदेश दे वह बाहर चला गया।

नौकरने श्यामासे कहा—"मुझे बाजार जाना है। मैं घर बन्द करूंगा।"

श्यामाने अपनी लड़की शांतिकी तलाश की। नौकरने उत्तर दिया—"आज प्रातः उसे लेकर विजयकान्त बाहर गये थे, लेकिन वापस आने पर साथ नहीं लाये। इससे अधिक मैं नहीं जानता हूं।"

२८

श्यामाके सामने पहले भी समस्याएं उपस्थित हुई थीं, लेकिन इसके समान नहीं। उनका सामना उसने बड़ी बहादुरी से किया, किन्तु अब वह भय खा रही थी। इसका कारण था कि पहले वह अपने को निष्कलंक समझती थी, अपने चरित्र को निर्दोष बतलाती थी और अपने को एक पवित्र नारी घोषित करनेमें गौरव अनुभव करती थी तथा अपने ऊपर दोष लगाने वालों को वह मूर्ख कहती थी; लेकिन अब वे सारी बातें नहीं रहीं। अपनी ही दृष्टिमें वह पतिता बन चुकी थी। उसने अपने पाप की एक निशानी दुनिया को दे दी, जिससे अपनी आत्मा को धोखा देकर भी संसारके समक्ष वह अपना मस्तक ऊंचा नहीं कर सकती थी।

नगरके बाहर गंगाके तट पर बैठकर वह अपने भविष्यके सम्बन्धमें सोचने लगी। इस संसारमें उसे कोई सहारा नजर नहीं आ रहा था। आशा भी अब थक चुकी थी। उसे भी अधिक दौड़ने का साहस नहीं हो रहा था। लेकिन जीवन-यापनके लिये तो श्यामा को अवश्य कुछ करना था। उसके मनमें वेश्या-वृत्ति अपनाने का भाव उठा, लेकिन वह घृणित पेशा था? सब तरहके पुरुषोंसे शरीर को स्पर्श करवना, उन्हें

आलिंगन करना आदि का चित्र सामने आते ही उसकी आत्मा कांप उठी और रोंगटे खड़े हो गये। फिर आत्महत्या करने का विचार हुआ, लेकिन प्राणके मोहने मां गंगा की गोदमें उसे प्रवेश नहीं करने दिया। किसी बड़े घरमें दासी का काम करने का भी उसे ख्याल हुआ, पर अपनी सुन्दरताके भयसे उधर भी जानेका साहस नहीं हुआ।

उस परित्यक्ता नारी को विकल देख कर आशाने उसे पुनः एक बार धोखा दिया और समाज की ओर संकेत किया। समाज को देखते ही उसका सारा अंग थर्रा उठा, पर उसके बार-बार हठ करने पर उसने फिरसे क्रूर समाजके चरणों पर गिरने का निश्चय किया। वह वहांसे उठ खड़ी हुई और आशा ने उसका पथ-प्रदर्शन किया। सर्व प्रथम वह मायके गयी। पिता भोलानाथ बूढ़े हो चुके थे और मां भी उसी अवस्थामें पहुंच चुकी थी। पुत्री को अनाथिनीके वेशमें देख कर माता-पिता की आंखोंसे आंसू की धाराएं प्रवाहित होने लगीं, लेकिन समाजके भय और संकोचसे एक अभागिनी सन्तान को शरण देने में वे असमर्थ हो रहे थे। जिस श्यामा को वे अपनी आंखों की पुतली समझते थे, उस श्यामा को अपने दरवाजे पर देख कर लज्जासे वे मरे जा रहे थे।

एक वृद्ध महिलाने कहा—"श्यामा! तुमने क्या किया? तीर्थके बहाने घरसे निकल गयी। तुम्हारा रहन-सहन देख कर तुमसे ऐसी आशा नहीं की जा सकती थी। बाप-दादे,

कुल-परिवार सबके नामोंमें तुमने कलंक लगा दिया। सचमुच यह जमाना बहुत ही बुरा है। किसीके बाहरी आचरण को देख कर उसके चरित्र का अन्दाजा लगाना कठिन है। मैं....।"

बीच हीमें एक दूसरी स्त्री बोल उठी—"दादी? इसके समान धूर्त औरत मैंने देखी नहीं। प्रयागराजमें रात्रिके समय इसने मुझसे कहा कि, मैं मेला देख कर आ रही हूं। मैंने इसपर आपत्ति प्रकट की और इससे कहा भी कि नवयुवतियोंके लिये रातमें मेला घूमना अच्छा नहीं है, क्योंकि गुण्डों की नजरोंसे उनका बचना कठिन होता है। पर इसने मेरी बात नहीं मानी और अकेले घूमने निकल गयी। उसके बाद आज ही इस कुलटा को देख रही हूं। अरे बाप रे....।"

वह अपनी बात समाप्त भी नहीं कर पायी थी कि दीवार की बगलसे झांक कर एक औरतने कहा—"अकेले तो नहीं गयी थी, गयी थी तो मेरे साथ ही, लेकिन कुछ दूर जाने पर इसने मेरा साथ छोड़ दिया और पुरुषों की टोलीमें प्रवेश कर उनसे धक्का-धुक्की करने लगी। उस हालतमें अपनी इज्जत बचाने के ख्यालसे मैं वहांसे चल पड़ी। मैं क्या जानती थी कि यह ऐसी रंगीली है।"

भोलानाथ चाहते थे कि, दरवाजेसे लोग हटे तो श्यामासे कुछ कहूं, पर लोग ऐसे मनोरंजनके साधन को छोड़ कर क्यों हटें? वे इस परिणाम को देखने के लिये वहां अड़े हुये थे कि आखिर भोलानाथ क्या करते हैं?

अन्तमें भोलानाथ को कहना पड़ा—"श्यामा! तुम्हारी दशा देख कर मेरा कलेजा दो खण्ड हो रहा है, पर तुम्हें मालूम है कि कुसमयमें किसका कौन मित्र होता है? एक पतिता पुत्री को रखने का इस अधम पिता को साहस नहीं हो रहा है। संसार····। इसके बाद उनका गला रुध गया, वे कुछ बोल न सकें।"

पिताके इस कठोर वचन पर श्यामा को ऐसा मालूम हुआ, मानो अथाह जलमें उसके पैरोंके नीचेसे किसीने नाव खींच ली। वह वहांसे चल पड़ी। उसने अन्य सम्बन्धियोंके भी दरवाजे खटखटाये, पर उस अनाथिनीके लिये कहीं भी जगह नहीं थी। अब वह और भी व्याकुल हो उठी। उसके सामने विपत्ति की काली मूर्ति अपना विकराल रूप धारणकर खड़ी हो गयी। चारों ओर संकट की काली घटाएं घिर आयीं और आपदाएं तूफान के समान अपना रंग बदल रही थीं। जिस धैर्यने हिन्द महा-सागरमें भी साथ दिया, उसने आज यहां साथ छोड़ दिया। आहत मृगीके सदृश वह व्याकुल होकर चारों ओर दौड़ रही थी, पर उसे कहीं भी आश्रय नहीं मिल रहा था। अपनी इस भयानक विपत्तिमें उसने दयाशंकर का स्मरण किया, पर दीन-दुखियों का वह सेवक कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। अपने इस दुर्दिनमें उसने प्रेम नगर की यात्रा की, पर प्रभा वहां उसे नहीं मिल सकी। लोगोंसे मालूम हुआ कि वह कहीं अध्यापिका का काम करती है। प्रेम नगरके पुनः दर्शनसे कई

दिन पूर्व की घटना का जब कि वह जीवित जलायी जानेवाली थी, स्मरण हो आया।

वह किस ओर चले, कोई मार्ग दीख नहीं रहा था। एक पराजित सैनिक की भांति हतोत्साहित होकर जयशंकर बाबूके महलके खण्डहरमें वह बैठ गयी। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानोवहां की गयी हुई श्री पुनः वापस आ गयी है।

भाग्य कहीं साथ नहीं छोड़ता है। वहां उसका विश्राम लेना क्या हुआ मानो अपनेको एक आफतमें उसने डाल दिया। उस खण्डहरमें एक सुन्दर नारी को देखकर सब चकित हो गये। अनेक तरहके लोग अनेक तरहके प्रश्न ? किसको क्या उत्तर दे, उसे सूझ नहीं रहा था। अपना परिचय छिपाते-छिपाते वह तंग आ गई, किन्तु छिप न सकी। किसीने उसे पहचान लिया और कहा—"यह तो दौलतरामकी पत्नी श्यामा है। कञ्चनपुरमें दयाशंकर की झोपड़ीमें मैंने इसे देखा था।" अब क्या था ? अब तो उसके दर्शक अत्यधिक संख्यामें एकत्रित होने लगे। किसीके भी मुखसे सहानुभूतिके शब्द नहीं निकल रहे थे; बल्कि व्यङ्ग वचनों की बौछार निरन्तर तीर की वर्षाके समान उसके सारे अंग को घायल कर रही थी। किसीने कहा कि, इसकी सुन्दरताने दयाशंकर और विजयकान्त दोनों को विचलित कर दिया और किसीने कहा कि इसके रूपने प्रभा और कुसुम दोनोंके सौभाग्य छीन लिये। इसी प्रकार जिसके मनमें जो आया, वही बोला। रुंधपर एक गिरफ्तार चोरकी भांति श्यामा

मौन होकर सबके व्यंग वचन सुन रही थी। इसी बीच कुसुम भी वहां आ पहुंची। किसी महिलाने हँसते हुये उससे कहा—"यही है तुम्हारी सौत श्यामा।"

कुसुमने बड़े गौरसे उसकी ओर देखा और कहा—"आग लगे इसके रूपमें, रुआबमें और सुन्दरतामें। इसने तो मेरा सर्वनाश कर डाला। इसीके कारण मैंने ससुराल छोड़ा और मायकेमें रह रही हूं।"

अपराधी का सर कभी ऊपर नहीं उठता है। श्यामा की भी वही दशा हुयी। लज्जा और शर्मसे वह गड़ी जा रही थी। अगर उस समय धरती फट जाती तो वह सानन्द उसमें प्रवेश कर जाती, पर मां वसुन्धरा भी अपनी उस अभागिनी पुत्री को शरण देने को तैयार नहीं हुयी।

तीरके समान चुभने वाली बातों का सहना जब उसके लिये असह्य हो गया तब दवाग्निमें जले हुये पंख हीन पक्षीके समान विकल होकर वह वहांसे भाग चली। रात भी कुछ बीत चली थी। रेलवे स्टेशन दूर था, यात्रा पैदल थी, भूमि कठोर थी और पैर कोमल थे। घबड़ाहट और व्यग्रताके बीच उसके प्राण सूख रहे थे। पर इस आत्मामें ऐसी शक्ति है कि समय पड़ने पर वह सब तरहके कष्टों को सह लेती है। अन्धेरी रात्रिमें हरे-भरे खेतोंको पार करती हुई वह बेगमें जा रही थी। उस समय उसे भय हो रहा था कि कहीं राहमें उसे कोई पुरुष न मिल जाय? हिंसक पशुओंसे मिलना उसे स्वीकार था, परन्तु पुरुषोंसे मिलना नहीं।

श्यामा को मार्गमें एक आलीशान भवन मिला, जो अपनी रमणीकताके लिये अपने पड़ोसमें प्रसिद्ध था। उस अन्धेरी रात्रिमें भी स्फटिक की उसकी दीवारें चाँदके समान चमक रही थीं। उसकी सतह की भूमि हरी दूबसे ढकी हुई अपने आकर्षणके साथ पड़ी थी। लोग उसी को जगनदास का मठ कहते थे।

श्यामा उस मठ की बगलसे निकल रही थी। पीछेसे किसीने आवाज दी—"कौन है ?"

श्यामाने पीछे की ओर देखा। एक गेरुआ वस्त्र धारी साधु उसकी ओर आ रहा था। उसके ललाट पर चन्दन की तीन रेखाएं थीं और गलेमें माला डोल रही थी। श्यामाने उसे उत्तर दिया—"मैं पथिक हूं, स्टेशन जा रही हूं, ट्रेन का समय समीप है।"

उसके मधुर स्वरने साधुके हृदयमें गुदगुदी पैदा कर दी, जिससे वह सहज ही में उसकी ओर आकर्षित हो गया। उसे फंसाने के लिये उसने शब्दों का जाल रचा और कहा—"मठ और मन्दिर निराश्रितोंके लिये ही होते हैं। नित्य दस पांच पथिक सन्ध्या हो जाने पर यहां विश्राम लेते हैं। तुमको किसी प्रकार की आशंका नहीं करनी चाहिये। रात यहां व्यतीत कर लो और सबेरे अपना रास्ता लेना। तुम जानती हो कि आज के युगमें किसी को धर्म-कर्म का ख्याल नहीं रहता है और उसमें भी तुम अकेली हो। आगे का रास्ता संकटसे खाली नहीं है।

पड़ोसके गांवमें शैतानों का अड्डा है। दिन-दहाड़े वहां लूट होती है। फिर तुम कैसे बच सकती हो?"

श्यामाने कहा—"महाराज, मुझे अभी स्टेशन पहुंचना आवश्यक है।"

साधुने कहा—"आवश्यक है तो जा सकती हो। तुम्हारे रहने या न रहने से मुझे कौन-सा लाभ? साधु का धर्म भलाई करना होता है,' इसलिये जो उचित बात थी मैंने कह दी है।"

श्यामाने मनमें विचार किया—"सन्तों का हृदय कोमल होता है। बात कल की है, कोई महीना या वर्ष की नहीं। पासके मरघट पर एक साधुने मेरे प्राण की रक्षा की और मेरी ओर उसने बुरी नजरोंसे नहीं देखा। साधु की बात मानने में ही कल्याण है।"

विपत्तिमें मनुष्य की बुद्धी भ्रष्ट हो जाती है। श्यामाके लिये भी यही बात लागू हुई। वह समझ नहीं सकी कि, श्मशानके साधु जयशंकर बाबू और अट्टालिकामें रहने वाले साधु जगनदासमें कितना अन्तर है? जयशंकर बाबूने जिस सांसारिक सुख का परित्याग किया है, जगनदासने उसीको अपनाया है।

श्यामाके रहने के लिये एक एकान्त कमरेमें प्रबन्ध किया गया। थकी-मांदी श्यामा को नींद आने में देर नहीं लगी।

आधी रात बीत चली। मठके प्रायः सभी लोग सो गये। किंतु

जगनदास, जिसे वासना व्यग्र कर रही, अभी तक जागा हुआ था। उसने दरवाजा खोला और दबे पांव श्यामाके कमरेमें प्रवेश किया। थकावटके कारण उसे अपने शरीर की कोई सुधि नहीं थी। एक मृत व्यक्तिके समान चेतना-हीन होकर वह विस्तर पर पड़ी थी। जगनदासने उस विस्तर पर पैर दिया। उसकी आत्मा कोसने लगी। किन्तु, वासनाने उसके ज्ञान को नष्ट कर दिया था; इससे आत्मा की ध्वनि पर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। उसने उसे जगाने का प्रयत्न किया। उसकी आंखें खुलीं और बन्द हो गयीं। फिर जगने पर उस राक्षस को देख कर उसे भय मालूम हुआ। चट उसने पूछा—"आप कौन हैं ?"

जगनदासने उत्तर दिया—"मैं जगनदास हूं। क्या तुम मुझे नहीं पहचानती हो ?"

श्यामाने पूछा—"क्या है ?"

जगनदासने उत्तर दिया—"एक बार तुम्हारे कोमल शरीर का आलिङ्गन करना चाहता हूं।"

श्यामाने उसकी ओर घृणा की दृष्टिसे देखा। उस साधु की आत्मा मर चुकी थी। वासनाके वेगमें वह उतावला हो रहा था। उसने उसके कंधे पर हाथ दिया। उस दृश्य को देख कर मालूम होता था कि कोई देव कन्या किसी दानवके पंजेमें पड़ गयी है। उसका हाथ हटाते हुये उसने कहा—"तुम्हारे ऐसे पापी को पाकर साधु समाज भी कलंकित हो गया।

साधु के वेशमें तुम इस देवालय को भी अपवित्र कर रहे हो।"

मरुभूमिमें घोर वृष्टि का जिस प्रकार कोई असर नहीं होता है, उसी प्रकार श्यामाके उपदेश का उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कामान्ध जगनदास को उसकी बातों पर हँसी आयी। वह उसे भय दिखाने लगा। श्यामा चिल्ला उठी। पर जगनदासके भयसे मठ का कोई भी आदमी उसकी सहायताके लिये नहीं आ सका। अपने को असहाय देख कर अपनी ही शक्ति का उपयोग करना उसने अच्छा समझा। उसने उसके गलेमें हाथ लगाया और पलंगसे नीचे गिरा दिया। जगनदासका मोटा शरीर जमीन पर पड़ा हुआ आहत पशुके समान दीख पड़ने लगा। वह चिल्ला उठा—"कोई दौड़ो रे ? इस पापिनीने मेरा हाथ तोड़ दिया।"

श्यामाने कमरे का दरवाजा खोला और फिर मठ का फाटक और नौ दो ग्यारह हो गयी।

२९

दयाशंकर की सुन्दरता पर कुमारी रोज पूर्ण रूपसे आकर्षित हो गयी। वह उसे हृदयसे चाहने लगी। नित्य सन्ध्या और प्रातः वह उसके साथ वायु-सेवनके लिये जाने लगी। दयाशंकर जब प्रकृतिकी शोभा देखनेमें मग्न हो जाता तब कुमारी रोज उससे प्रेम-प्रसंग की बातें करने लग जाती। दयाशंकर की आंखें जब पुष्पों की शोभा देखने लगतीं तब कुमारी रोज कहने लगती—"मि० शंकर! देखो फूलोंमें भौंरे किस प्रकार चिपके हुये हैं।"

पक्षियों का कलरव सुनकर कुमारी रोज कहने लगती—"कैसी सुरिली आवाज है? क्या तुम्हारे ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा? मैं तो बेचैन हो रही हूं।"

जब सूर्य की किरणें सन्ध्या समय बरफसे ढकी हुई पर्वतके शिखरों पर चमकने लगतीं, तब कुमारी रोज दयाशंकरसे कहने लगती—"कैसा सुन्दर दृश्य है? इच्छा होती है कि हम दोनों यहीं रहें। कहो तुम्हारी क्या राय है?"

दयाशंकरसे उसका कोई उत्तर न पाकर वह कहने लगती—"तुम बड़े शुष्क हृदयके व्यक्ति हो। तुम प्रेम करना जानते ही नहीं, मैं हृदयसे तुम्हें प्यार करती हूं और तुम मेरे उस कोमल

९

हृदय को मसोल रहे हो। क्या किसी का हृदय दुखाना ही तुम्हारे जीवन का सिद्धान्त है ?"

एक दिन संध्याको वे काफी समय तक घूमते रहे। सूर्यास्त होने-पर अपने निवास स्थानकी ओर लौट पड़े। इतने ही में आकाश में चन्द्रमाका उदय हुआ और उसकी शीतल ज्योति महिमण्डल पर छा गयी, लेकिन कुमारी रोज का हृदय उससे झुलसने लगा। उसने दयाशङ्करसे अनुरोध करते हुये कहा—"कुछ देर यहीं बैठो, मैं थक गयी हूं।"

दोनों बैठ गये। कुमारी रोजने कहा—"तुम्हें ज्ञात है कि मैं कुमारी हूं।"

दयाशंकरने उत्तर दिया—"हां, तुमने कई बार कहा है।"

कुमारी रोज—तुम विधुर हो ?"

दयाशंकर—"हां।"

कुमारी रोज—"तब तुम मुझसे विवाह क्यों नहीं कर लेते हो ?"

दयाशंकर—"मैं विवाह करना नहीं चाहता हूं।"

कुमारी रोज—क्यों ?"

दयाशंकर—"मानव-सेवा में मैं अपना जीवन लगाना चाहता हूं।"

कुमारी रोज—"नहीं शंकर ? तुमको मुझे अपनी पत्नीके रूप में स्वीकार करना होगा। आज तक किसी पुरुष पर मेरा हृदय आकर्षित नहीं हुआ। लेकिन मैं नहीं कह सकती हूं कि

तुममें कौन-सा जादू है कि तुमने मेरे हृदय को अपने वशमें कर लिया।"

दयाशंकर—"मैं जादू टोना नहीं जानता। व्यर्थ की बातें मत करो।"

कुमारी रोजने मुस्कुरा कर कहा—"जादू टोना नहीं जानते हो, लेकिन मेरे हृदय पर अधिकार जमाना जानते हो। अगर तुम मुझसे शादी करना नहीं चाहते हो, तो कमसे कम मुझे प्यार तो करो।"

दयाशंकरने उत्तर दिया—"प्यार तो अवश्य करता हूं, किन्तु ···।"

कुमारी रोज बीच ही में बोल उठी—"किन्तु, लेकिन, परन्तु मैं कुछ नहीं जानती हूं। मैं प्यार चाहती हूं।" इतना कहकर वह उसकी देहसे लिपट गयी। उसका अंग-स्पर्श होते ही दया-शंकरके शरीर का प्रत्येक तार झन्ना उठा। उसकी सांसें जोरों में चलने लगीं। इस स्थितिमें भी वह संभलने का प्रयत्न कर रहा था, पर वह उसके अंगोंसे और भी चिपकी जा रही थी। उसकी आकर्षण भरी वाणी और प्रेम-भावसे वह अपने सदाचारके आसनसे विचलित होने लगा। उसने भी उसे आलिङ्गन करने के लिये अपना हाथ बढ़ाया। पर उसी समय उसकी अन्तरात्मासे आवाज उठी—"दयाशंकर! न जाने हिमालयके इस आगनमें कितने ऋषियों और महात्माओं का ध्यान परियोंने भंग किया और आज यह गोरी इसी स्थानमें

तुम्हारी भी तपस्या नष्ट करना चाहती है। सचेत हो जाओ।"

दयाशंकर की आंखें खुलीं। वह होशमें आ गया। उसने बल-पूर्वक कुमारी रोज को अपने शरीरसे अलग किया और आप अलग जाकर खड़ा हो गया। कुमारी रोज क्रोधित हो नागिन की भांति फुफकार छोड़ने लगी। उसकी मुखाकृति से मालूम होता था कि वह दयाशंकर को निगल जाने को तैयार है। उसने दयाशंकरसे कहा—"तुममें मनुष्यता नहीं है। लज्जा त्याग कर मैंने अपने को तुम्हारे चरणों पर अर्पित किया था, लेकिन तुमने ठोकर मार कर मुझे विलग कर दिया। क्या यही तुम्हारा धर्म है?"

दयाशङ्करने कहा—"बहिन! अपराध हो गया, क्षमा करो। किसी नारी का सतीत्व नष्ट करना न तो मेरा धर्म है और न मेरा ध्येय है।"

दयाशङ्कर आगे बढ़ा और कुमारी रोज पीछे चली। कुछ देरमें दयाशङ्कर अपने स्कूलके छात्र-निवासमें पहुंचा और कुमारी रोज अपने बंगलेमें पहुंची। उस रात दयाशङ्कर को विश्राम नहीं मिला। वह सारी रात सोचता रहा—"आज मैं कैसे बचा? कुमारी रोज किस प्रकार मेरा सर्वनाश करना चाहती थी? मैं नहीं समझ रहा था कि कुमारी रोज के सुन्दर शरीरमें इस प्रकार का काला हृदय है, जो नाग बन कर दूसरे को डस सकता है। अगर आज मैं आहत हो

जाता तो स्वर्गलोकमें प्रभा की आत्मा को कितना क्लेश पहुंचता। खैर मैं सुरक्षित रहा। पैर अवश्य फिसले, लेकिन मैं संभल गया। इसलिये मेरा पतन नहीं कहा जा सकता है। अतएव, इससे मेरी आत्मा को कुछ सन्तोष है।"

इधर कुमारी रोज हताश होकर अपने बिस्तर पर पड़ी थी। क्रोध उतरनेके बदले क्षण-क्षण बढ़ता ही जा रहा था। उसका गौर बदन आगके समान लाल होकर भयानक प्रतीत हो रहा था। कभी वह अपने ओठ को दांतोंके नीचे दबाती और कभी माथों पर हाथ रख कर सोचने लगती—"दयाशंकर के समान अधम, नीच इस संसारमें कोई नहीं होगा। व्यर्थमें मैं उसके सामने एक भ्रष्टा नारी बनी। उसका हृदय कितना कठोर है, जो मेरे आत्मसमर्पण करने पर भी नहीं पिघल सका? उसका तिरस्कार मैं आजन्म नहीं भूलूंगी। एक हिन्दुस्तानी और फिर दूसरेमें हिन्दू? वह प्रेमकी रीति क्या जाने?"

रोजने उसी समय कागज-कलम ली; स्कूलके सेक्रेटरीके नामसे पत्र लिखा और चपरासीके हवाले किया। चपरासीने उसी समय वह चिट्ठी सेक्रेटरी को पहुंचायी। सेक्रेटरीने बहुत आश्चर्यके साथ उसे पढ़ा, जिसमें दयाशंकर को अध्यापक की जगहसे हटाने को लिखा गया था और उस पर अभियोग लगाया गया था कि ईसाई छात्रोंके बीच वह हिन्दू धर्म की शिक्षा देता है और वैदिक धर्म को श्रेष्ठ बतलाता है। इससे ईसाई धर्म पर पूरा आघात पहुंचता है।

यद्यपि सेक्रेटरी को उस पत्र पर विश्वास नहीं हुआ तथापि कुमारी रोज की आज्ञा का उल्लंघन करना उसकी शक्ति के बाहर की बात थी। उसने दयाशंकर को एक महीने की नोटिस देने का निश्चय किया।

कुमारी रोज चाय पीने बैठी, पर चायसे चाह नहीं गयी और दिल की परेशानी ज्यों की त्यों कायम रह गयी। दयाशंकर की सूरत अब भी उसकी आंखोके सामने नाच रही थी, जिस पर वह कभी मुग्ध होती थी और कभी रंज होती थी। वह मन ही मन कहती थी—"अब मिस्टर को मालूम होगा कि एक रोटी की कीमत कितनी होती है ? जब अपनी जीविकाके लिये वह मेरे पास आवेगा तो, मैं बतला दूंगी कि एक यूरोपीय युवतीके तिरस्कारका कैसा कटु परिणाम निकलता है।"

उस रात कुमारी रोजने भोजन भी नहीं किया। उसे नींद भी ठीकसे नहीं आयी। दूसरे दिन जब वह कुछ शान्त हुई, तब उसके हृदयमें दयाशंकरके प्रति रात वाली भावना नहीं रही।

उसने अपने मनमें विचार किया—"नारियों का नयनशर जिसे न लगा हो, वह व्यक्ति अवश्य महान है, गोरियोंके मुख का जिसने कभी चितवन नहीं किया वह अवश्य महान है और त्याग, तपस्या तथा मानव-सेवा ही जिसके जीवनका व्रत है, वह अवश्य महान है। दयाशंकरमें ये सभी गुण वर्तमान हैं।

एक युवतीके प्रेमपाशसे बेदाग निकल जाना कितना दुष्कर है? इसका अनुभव उसके और मेरे सिवा दूसरे को नहीं हो सकता है? मैं उसके सामने नतमस्तक हूं। शर्मसे उसके सामने मुझे जाने का साहस नहीं होता है। उसके शब्द—"बहन? नमस्ते।" अब भी मेरे कानोंमें गूंज रहे हैं।"

३०

श्यामा काशी पहुंची। पण्डोंसे वह तबाह थी। क्या नाम? कहां घर? क्या पता? पिता का क्या नाम? श्वसुर का क्या नाम? आदि प्रश्नोंसे वह तंग आ गयी। कोई अपनी वही निकाल कर कहता कि रामपुर मेरा यजमान है तो कोई कहता कि कञ्चनपुर मेरा यजमान है। अगर एक पण्डा कहता कि दौलतरामजी सपत्नीक एकबार मेरे यहां ठहरे थे तो दूसरा मुंह बनाकर दौलतरामके पूर्वजोंके नाम बतला कर कहता कि यह घराना कोई मेरा नया यजमान नहीं है।

अन्तमें श्यामा एक पण्डाके यहां ठहर गयी। उसने अपने मनमें विचार किया—"कल प्रातःकाल गंगास्नान करना होगा और ब्राह्मण और संन्यासियों को दान देना होगा। लोग कहते हैं कि काशीमें गंगास्नान करने और दान देनेसे मनुष्य अपने पापोंसे निवृत्त हो जाता है। पासमें तो पैसे नहीं हैं, अगर गलेका हार बेच दिया जाय तो काम निकल सकता है।"

उसने अपना अभिप्राय अपने पण्डेसे कहा। पण्डाने हजार का हार दो सौ रुपयेमें लेकर सन्दूकमें बन्द कर दिया और मन ही मन अपने भाग्य की सराहना करते हुये कहा—"कल तो ये रुपये पुनः इसी सन्दूकमें आ जायेंगे।"

श्यामा प्रातःकाल उस पण्डाके साथ गंगा तट पर पहुंची। संन्यासी और ब्राह्मण उसके पास की गठरी पर नजर लगाये हुये थे और गुण्डे एक दृष्टिसे उसके रूप को देख रहे थे। ये दोनों चीजें उसके लिये खतरनाक प्रमाणित हो रही थीं। लेकिन इनका ज्ञान रहते हुये भी वह लापरवाह थी। जब वह स्नान करके निकली तब दानके लिये साधु, संन्यासी और ब्राह्मणोंने उसे घेर लिया। उसने रुपये की गठरी खोली और उसमें से एक रुपया निकाल कर एक संन्यासीके हाथमें दिया और कहा कि तुम लोग इसे आपसमें बांट लो। पर बांटता कौन है, वह रुपया लेकर चलता बना। जब वह फिर रुपया निकालने लगी तब संन्यासियोंने उसका आंचल खींच लिया, उसके रुपये नीचे गिर कर बिखर गये। अब क्या था, साधु, संन्यासी और भीखमंगोंने उन्हें लूट लिया। उपस्थित व्यक्तियों ने श्यामाके साथ सहानुभूति प्रकट करने के बदले मजाक किया। एकने कहा—"देखना बची हुई सम्पत्ति भी न लुट जाय।"

जब साथके पण्डाको ज्ञात हुआ कि अब श्यामाके पास एक पैसा भी नहीं बचा तब उसने भी उसका साथ छोड़ दिया। वह पुनः अकेली रह गयी। किसी प्रकार अपने मनको सान्त्वना देकर मन्दिरों में वह देवताओं के दर्शन करने लगी। लगभग एक बजे दिन तक वह इसी प्रकार चक्कर काटती रही। लेकिन भूख-प्यासके कारण अब उसका चलना कठिन हो गया

था। उसने अपने मनमें कहा—"पेट भी प्राणियोंके लिये कैसी बला है। इसे भरने के लिये चींटीसे लेकर हाथी तक परेशान रहते हैं। संसारमें प्रत्येक जीव को जितना सम्बन्ध इस अधम पेटसे है, उतना और किसीसे नहीं। चोरी, डकैती, शत्रुता, मित्रता, युद्ध, संधि, उद्योग, व्यापार आदि सभी कार्य इसी पेट की प्रेरणासे होते हैं। अगर इसका प्रश्न नहीं रहता, तो विश्वमें सत्यता, एकता, त्याग और प्रेम का स्थायी रूपसे राज्य बना रहता।"

किसीके कहने पर वह एक क्षेत्र में, जहां मुफ्त भोजन मिलता था, गयी। एक अधिकारीने उससे प्रश्न किया—"तुम कौन जाति की हो?"

श्यामाने उत्तर दिया—"हिन्दू।"

अधिकारीने कहा—"हिन्दूमें तो ब्राह्मणसे लेकर डोम तक हैं। इनमें तुम कौन हो?"

श्यामाने उत्तर दिया—"इन्हींमें से एक मैं भी हूं।"

अधिकारीने कहा—"अगर ऐसी बात है तो, अपना रास्ता लो। यहां केवल ब्राह्मणों और संन्यासियों को भोजन दिया जाता है।"

एक संन्यासीने हँस कर कहा—"तुम्हें तो भोजन देने वाले हजारों मिलेंगे। कृपया क्षेत्रोंपर अपना आधिपत्य मत जमाओ।"

श्यामाने अपने मनमें कहा—"अब समय ऐसा बुरा आ गया कि भीख भी नहीं मिलती है।"

वह रेलवे स्टेशनके मुसाफिर खानेमें जाकर बैठ गयी। भूख की ज्वालासे वह बेचैन हो रही थी। थकावटके कारण लेट जाना चाहती थी, पर लज्जा वश लेट न सकी। यात्री उसकी ओर एकटकसे देख रहे थे। कोई मुस्कुरता, कोई हँसता और कोई धीमे स्वरमें प्रेमका गीत गाता। श्यामा सब समझती थी, पर कर क्या सकती थी ?

जिस समय यात्रियोंका उसके विरुद्ध यह षड़यन्त्र चल रहा था, उसी समय एक बूढ़ी महिला उसके पास आकर बैठ गयी। उसकी अवस्था पचास-पचपन वर्षकी रही होगी। अगल-बगल देखकर उसने श्यामासे प्रश्न किया—"बिटिया, कहां जाओगी ?" फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह बोलती गयी—"तुम क्यों उदास मालूम पड़ रही हो ? क्या तुमने अभी तक भोजन नहीं किया है या तुम्हारी कोई वस्तु चोरी हो गयी है ?"

श्यामाने उत्तर दिया—"मां, मैं यहां तीर्थ करने आयी थी, पर क्या तीर्थ करूं ? संन्यासियोंने मेरे सब रुपये छीन लिये। अब मेरे पास एक पैसा भी नहीं है, जिससे एक मुट्ठी चना खरीद कर उदर को संतोष दे सकूं।"

महिलाने अजीब-सा मुंह बना कर उसके साथ सहानुभूति प्रकट की और फिर कहा—"बिटिया, यह काशी है काशी ! यहां सोच समझ कर चलना होता है। बाहर वालों की यहां अच्छी तरह हजामत की जाती है। खैर चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। तुम्हारी यात्रा और भोजन का प्रबन्ध मैं

कर देती हूं, अपने घर वापस जाओ, नहीं तो दिन-दहाड़े लुट जाओगी।"

श्यामा उसकी ओर बहुत गौरसे देख रही थी। उसने पुनः कहा—"क्या देख रही हो? मैं सच कहती हूं। यहां तुम आपदाओंमें फंस जाओगी। उठो मेरे साथ चलो।"

श्यामा उसके साथ हो चली। यात्री उसकी ओर देखते ही रह गये। राहमें उसने श्यामासे कहा—"आज मैं बीस वर्षसे यहां रह रही हूं। मेरे पास काफी सम्पत्ति है, जिसका उपभोग करने वाला कोई नहीं है। इसी बनारस शहरमें मेरा भव्य भवन राज-महल को भी मात कर रहा है, पर आज उसमें चिराग जलानेवाला भी कोई नहीं है। अकेली एक कमरेमें प्रेत की नाई पड़ी रहती हूं और अपने अतीत का स्मरण कर रोती रहती हूं। हाय रे मेरा भाग्य?"

श्यामाने पूछा—"मां! क्या तुम्हें कोई सन्तान नहीं है?"

उसके प्रश्न पर उसकी आंखोंसे दो बूंद आंसू गिर पड़ें। आंचलसे आंसू पोछनेके बाद उसने कहा—"बिटिया! संतान की कौन कमी थी—चार पुत्र और चार पुत्रियां। पर भाग्य में एक भी संतान नहीं थी, मेरे दुर्भाग्यने उन आठों को मुझसे छीन लिये और उनकी याद्में रोनेके लिये मुझे छोड़ दिया।" इसके बाद उसका गला भर गया, वह बोल न सकी।

श्यामा को उस पर बड़ी दया आयी। उसने उसके साथ सहानुभूति प्रकट करते हुये कहा—"मां! रो मत। संसारमें

कोई रहने आया है ? कोई आज चलता है और कोई कल। यह तो माया का संसार है। इसीमें पड़कर मनुष्य अपना जीवन बरबाद कर देता है।" इतना कह कर वह खड़ी हो गयी।

महिलाने पूछा—"क्या तुमको थकावट मालूम हो रही है ? यहांसे थोड़ी दूर पर मेरा मकान है। चलो वहां भोजन और विश्राम करो ; प्रातःकाल अपने देशकी राह लेना।"

श्यामाने कहा—"मां ! स्टेशनसे बहुत दूर चली आयी हूं और अब सूर्यास्त भी हो गया। आगे बढ़नेमें मुझे भय मालूम हो रहा है।"

महिलाने हँसकर कहा—"मेरे साथ तुमको कौन-सा भय ? निर्भय होकर साथ चलो।"

बार बार धोखा खानेपर भी श्यामाके हृदयमें ज्ञानका उदय नहीं हुआ। उसने यह भी विचार नहीं किया कि वह महिला अकारण ही उस पर इतना प्रेम क्यों दिखला रही है ? वह उसकी बातोंमें विश्वास कर आगे बढ़ी और कुछ दूर जाने पर उसके साथ एक मकानमें उसने प्रवेश किया। महिलाने उसका अच्छी तरह स्वागत किया। उसके विश्रामादि का प्रबन्ध कर वह बाहर चली आयी। उसकी प्रतीक्षामें दो युवक खड़े थे। उसे देखते ही वे बोल उठे—"चिड़िया कैसे फँसी ?"

उसने उत्तर दिया—"क्या कहूं बेटा ? बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। कई गुण्डों की आंखें इस पर

लगी थीं। उनके चंगुलसे निकाल कर मैंने इसे यहां लाया है। मेरे परिश्रम पर तुम्हें ख्याल करना होगा और अच्छा पारितोषिक देकर मुझे संतुष्ट करना होगा।"

दोनों युवकोंने मुस्कुराते हुये कहा—"हां, तुमने काफी परिश्रम किया है। तुमको अच्छा इनाम मिलेगा। गंगा तटसे ही हमने इसे उड़ाने का यत्न किया था, पर हम असफल रहे।"

महिलाने कहा—"अच्छा अभी मैं जाती हूं, कल प्रातः काल आऊंगी, लेकिन तुमलोग अभी इसके साथ छेड़खानी मत करना, नहीं तो परिणाम विपरीत होगा।"

दोनों युवकोंने कहा—"हां, तुम्हारा कहना ठीक है।" उनकी बातें श्यामाके कानोंमें पहुंच रही थीं। वह व्याकुल हो उठी। अपने को पुनः फन्देमें देखकर उसे जगनदासके मठ का स्मरण हो आया। उसने अपने मनमें विचारा—"एकके बाद दूसरा संकट आता ही रहता है। एक विपत्ति का जब तक सामना करती रहती हूं, तबतक दूसरी विपत्ति भी आ पहुंचती है। इसी बनारस शहरमें कामेश्वरने चुनारसे मुझे लाया था।" इसी बीच उसे पद-ध्वनि सुनाई पड़ी। अपनी रक्षाके लिये उठकर उसने भीतरसे किवाड़ बन्द कर दिया।

रातमें कईबार दोनों युवकोंने दरवाजा खटखटाया, पर श्यामाने खोला नहीं। सूर्योदय होने पर वह महिला पुनः आयी और बाहरसे ही उसने आवाज लगायी—"बिटिया!

अभीतक सोयी हो ! उठो स्नानादि करो। काशीमें तो लोग किरण छिटकनेके पहले ही उठकर पूजापाठमें लग जाते हैं।"

श्यामाने किवाड़ खोला और बहुत ही प्रेम भरे शब्दोंमें कहा—"मां ! मेरे ऊपर तुम्हारी बड़ी कृपा हुई। तुम्हारा भला हो। भोजन करनेके बाद पूरी नींद आयी। अभी कुछ तबीयत हलकी मालूम होती है। अब इच्छा होती है कि खूब स्नान करूं, जिससे सारी थकावट दूर हो जाय।"

महिलाने उन युवकोंको जल लाने का संकेत किया। श्यामाने कहा—"नहीं, जल लाने की आवश्यकता नहीं है। मैं भी तुम्हारे साथ गंगाजीमें स्नान करने चलूंगी।"

महिलाने कहा—"तुमने यहां की स्थिति देख ली है। तुम्हारे पीछे गुण्डे लगे हुये हैं; तब तुम कहती हो कि गंगास्नान करने चलूंगी ?

श्यामाने मुंह बनाकर कहा—"गुण्डे क्या करेंगे ? जब मां साथमें रहेगी तब बेटी पर कौन नजर डाल सकता है ?"

महिलाने हँस कर कहा—"जब न मानती हो तो चलो; दो-चार डूबकियां लगा कर दोनों मां बेटी चली आयें।"

श्यामा और महिला दोनों स्नान करने चलीं। मकान के बाहर पैर देते ही श्यामाके प्राण लौटे। आगे आगे महिला जा रही थी और पीछे पीछे श्यामा। वह श्यामासे कहती जाती थी—"पुत्री ? अपनी इज्जत, प्रतिष्ठा अपने हाथ में होती है। इस प्रकार स्नान करना कि तुम्हारा कोई अंग कोई

देखने नहीं पावे। स्त्रियों को अपनी लज्जा बचाने में ही गौरव है।"

श्यामा केवल "हां" "हां" करती जाती थी।

स्नान करने के बाद जब मकान वापस चलने का प्रश्न आया, तब श्यामाने उससे कहा—"मां? अब तुम अपने मकान का रास्ता लो और मैं अपने देश का।"

इतना सुनते ही महिला का होश उड़ गया। फिर भी उसने संभल कर कहा—"इतनी जल्दी क्यों? दो-चार दिन रह कर काशी नगरी के दर्शन कर लो, यहां की धूलि और जलसे अपने को पवित्र कर लो; फिर अपने देश की राह पकड़ना। अगर दो-चार दिन यहां नहीं रहना चाहती हो तो, कमसे कम मेरे मकान पर चलो और यात्रा का व्यय मुझसे लेकर सन्ध्या की ट्रेनसे घर जाओ।"

श्यामाने उत्तर दिया—"अपना राह-खर्च अपने पास रखो। अब मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूंगी। तुम ऐसी औरतों को मैं अच्छी तरह पहचानती हूं।"

इतना कह कर उसने उसका साथ छोड़ दिया।

महिलाने देखा कि उसके हाथ की चिड़िया उड़ चली। फिर भी उसने उसको फँसाने का प्रयत्न किया। वह जोरोंमें चिल्ला उठी—"आज मेरी इज्जत गयी, मेरी बिटिया मेरे घरसे भागी जा रही है। कोई बाबू भैया मेरी सहायता करो।"

महिला की चिल्लाहट पर वहां काफी लोग एकत्रित हो

गये। सब यही प्रश्न करते थे "तुम्हारी बिटिया कहां है?"

महिला रोती जाती थी और श्यामा की ओर संकेत कर कहती जाती थी—"यही मेरी बिटिया है बाबू। किसी गुण्डे की नजरमें आकर भागी जा रही है। मेरे घर इसे पहुंचाओ भैया!"

श्यामा उसका विरोध करती हुयी कह रही थी—"मैं इसकी पुत्री नहीं हूं। यह महिला कुटनी है।"

उन दोनों की विपरीत बातें सुन कर लोगोंके लिये किसी निर्णय पर पहुंचना कठिन हो रहा था। कोई महिला का पक्ष लेता था और कोई श्यामा का। जब श्यामा के पक्ष की बातें होती थीं तब महिला कह उठती थी "ऐसे ही गुण्डे भले घर की बहू-बेटियोंको बरबाद कर देते हैं।" जिस समय यह तर्क वितर्क हो रहा था, उसी समय दो युवक वहां पहुंचे और श्यामा का हाथ पकड़ खींचने लगे। इतना ही नहीं उन दोनोंने साक्षी देते हुये कहा—"वह इस महिलाकी लड़की है। जमानाको देखते हुए लोगोंने महिलाकी बात सही मानी। अपनी विजय देखकर दोनों युवकोंकी सहायतासे महिला उसे जबर्दस्ती ले जानेकी चेष्टा करने लगी। इस पर श्यामा अधीर होकर रोने और चिल्लाने लगी। पासके पहरेके सिपाहीके कानोंमें जब उसके चिल्लानेकी आवाज पहुंची, तब वह भी वहां आ धमका। वह चारों को पकड़ कर थाना ले गया। थानाने जांच-पड़ताल कर श्यामा को छोड़ दिया। महिला छाती पिटती हुयी घर चली गयी।

—❀—

३१

श्यामा कचहरी, धर्मशाला, स्कूल, कालेज, सड़क, गली और सार्वजनिक स्थानोंमें भिक्षाटन करने लगी और उससे जो मिल जाता था, उसीसे अपने जीवन का निर्वाह करती थी। मैले-कुचैले और फटे-पुराने चीथड़ोंके अन्दर भी उसकी सुन्दरता छिप नहीं रही थी; बल्कि एक कंगाल की गुदड़ीमें छिपटी हुई मणिके सदृश चमक कर वह और भी आकर्षक प्रतीत हो रही थी। जिस पुरुषके सामने वह हाथ पसारती थी, वही मुस्कुरा उठता था, वही हँस देता था और वही आंखें मारने लगता था। कोई-कोई तो उसे देखते ही कह उठते थे—"हाय ! ऐसा सौन्दर्य और भिक्षाटन ?" अपने को शिक्षित कहने वाले लोग भी उसे देख कर चञ्चल हो उठते थे और उनके मुखसे भी यह सहसा निकल पड़ता—"कंगालोंके यहां भी ऐसी परी जन्म ले सकती है ! हां, कभी-कभी कोयले की खानमें भी हीरा मिल जाता है।"

श्यामा सबकी अपमान भरी बातें सुन लेती थी और दो-चार पैसे लेकर वहांसे हट जाती थी।

इन अपमानों और कटु आलोचनाओंसे उसके हृदयके सुन्दर भाव और विचार धीरे-धीरे नष्ट होने लगे। अब कष्ट

सहना उसकी शक्तिके बाहर की बात हो गयी। वह आपदाओं से घबड़ा उठी। घोर अन्धकारमें उसको आशा की क्षीण रेखा भी कहीं नजर नहीं आ रही थी। उसके साथ सहानुभूति प्रायः सभी प्रकट करते थे, लेकिन वह सहानुभूति केवल मौखिक थी, हृदय की नहीं। उसमें स्वार्थ भरा था। उसके लिये चारों ओर लुटेरे भरे थे, व्यभिचारी, धूर्त और गुण्डों की भरमार थी। वह सोचती थी मेरे पास न तो हीरा मोती और न रत्न है और न तो वैसी कोई सम्पत्ति है जिसके लिये पुरुष समाज की गृद्ध दृष्टि मुझपर लगी हुई है। मेरे चञ्चल यौवन, क्षण भंगुर सौन्दर्य और अस्थायी रूप पर वासनाके पुजारी बेचैन हो रहे हैं और मैं इनकी रक्षाके लिये परेशान हो रही हूं। बस मेरे संकट का मूल कारण यही है।

"पुरुष समाजसे मैं बुरी तरह पराजित हुई। वह मेरे रूपका प्यासा है, मेरे सौन्दर्य का भूखा है और मेरी सूरत पर दीवाना है। उसके हृदयमें मेरे लिये व्यग्रता और व्याकुलता है। वह मेरा रक्तपान करना चाहता है और मेरी अस्थियां चबाकर अपनी आत्मा को सन्तुष्ट करना चाहता है। उस भूखे और प्यासे शेरसे मुझे अपनी रक्षा असम्भव मालूम होती है। परन्तु इस असम्भव को भी मैं सम्भव करके दिखला दूंगी।"

—❀—

३२

कृष्णाष्टमी की रात जगनदासके मठमें बहुत बड़े उत्साहके साथ उत्सव मनाया जा रहा था। दीपोंके प्रकाशसे रात भी दिनके रूपमें परिणत हो गयी थी। चारों ओर गमलोंमें रंग-बिरंगके फूल शोभ रहे थे। जूही और हिने की सुगन्धसे दिशाएं सुगन्धित हो रही थीं। मन्दिर की सजावट और भी सुन्दर थी। दीवारें हरी मलमलसे ढंकी थीं। उसमें जगह-जगह श्वेत, लाल और पीले पुष्प गुथे हुये थे। मन्दिरके मध्यमें संगमरमर की भगवान कृष्णकी मूर्ति अपनी प्यारी राधाके साथ खड़ी थी।"

उन मूर्तियोंके सामने नजूमी का नृत्य हो रहा था। महफिल के मध्यमें जगनदास मसनदके सहारे बैठा हुआ नृत्य और संगीत का आनन्द लूट रहा था। नजूमीके चन्द्र आनन पर उसकी आंखें जाकर टिक गयीं। नजूमी नृत्य और संगीतमें कभी-कभी रुक जाती थी। इसका कारण वही जानती थी, दूसरे नहीं। यह मन्दिर उसे अतीत का स्मरण करा रहा था। अपने जीवन की कुछ घटनाओं की याद आते ही उसके स्वर रुक जाते थे। कभी-कभी उसकी मृगी-सी आंखोंसे मोती की दो बून्दें ढलक पड़ती थीं।

उसी समय मन्दिरमें एकाएक कोलाहल मचा। नृत्य और संगीत सब बन्द हो गये। लोगोंने देखा कि जगनदास का शिष्य भंगीके एक लड़के को बहुत बुरी तरह पीट रहा है। क्रोधसे उसका सारा शरीर कांप रहा है। जगनदास भी दौड़ा हुआ पहुंचा। घटनासे अवगत होते ही उसने कहा—"अछूत होकर मन्दिरमें प्रवेश कर गया। हमारे भगवान अपवित्र हो गये।"

उसके बाद जगनदास कूप पर स्नान करने गया और लड़के का पिता रोता हुआ श्मशानमें पहुंचा। उसे देखते ही कुत्ते भूकने लगे। साधु जयशङ्कर बाबू बाहर निकले। उनको देखते ही वह आदमी उनके पैरपर गिर पड़ा। दुखड़ा सुनाते हुये उसने कहा—"आपके वैराग्य लेने से हम लोगों की स्थिति अनाथके समान हो गयी है। जगनदासके अनाचार और अत्याचारसे हम लोग ऊब गये हैं। कठिनसे कठिन परिश्रम का काम लेकर भी वह लोगों को मजदूरी नहीं देता है। अगर इस प्रकार का जोर जुल्म जारी रहा तो हम लोगों का यहां रहना असम्भव हो जायेगा। उसकी कहानी कहां तक कहूं। उनके भयसे किसी भी स्त्री का मन्दिरके पाससे निकलना कठिन हो गया है।"

उसकी बातें सुन कर जयशङ्कर बाबूने एक लम्बी सांस ली और उसी समय अपने हाथमें एक पत्र और एक डंडा लेकर मन्दिरके लिये प्रस्थान किया। आध घण्टेमें वे मन्दिरमें पहुंच गये। उन्हें देखते ही सभी दर्शक नारा लगाने लगे—"जयशङ्कर बाबू की जय।"

जयशङ्कर बाबू आगे बढ़े और महफिलमें पहुंच कर जगनदास को सम्बोधित करते हुये कहने लगे—"तुमने इस बच्चे का सर क्यों फोड़ दिया ?"

उन्हें देखते ही जगनदासके शरीर का खून सूख गया। जगनदासने कांपते हुये स्वरमें कहा—"महात्मा ? इन भंगियों से तो मैं हैरान हो गया हूं। बार-बार मना करने पर भी ये मन्दिरमें आ जाते हैं; इनकी छायासे धरती कांपती है। फिर हमारे भगवान अपवित्र हुये तो इसमें कौन-सी आश्चर्य की बात ?"

इस पर जयशंकर बाबू को और भी क्रोध चढ़ा। उन्होंने नजूमी की ओर संकेत करते हुये कहा—"इस वेश्याके आने से यह मन्दिर अपवित्र नहीं हुआ और इन भंगियोंके आने से अपवित्र हो गया ?"

जगनदासने कहा—"साधु ! साधु ! ऐसी बात आप न बोलें। वेश्या और भंगी बराबर ?"

जयशंकर बाबूने कहा—"चुप रहो बदमाश ! तुम्हारी कोई बात मुझसे छिपी नहीं है। इस देवालय को तुमने व्यभिचार का अड्डा बना रखा है।"

जगनदास की आंखें भी इस पर लाल हो गयीं। उसने कहा—"फिर मुंह बन्द करो। क्या मैं व्यभिचारी हूं ?"

जयशंकर बाबूने इस पर अपने हाथ का पत्र उसके सामने रखते हुये कहा—"देखो, तुम्हारे व्यभिचार का भण्डाफोड़ यह

पत्र करता है। देखो इसमें लिखा है—"जयशंकर बाबू ? आपने एक अधमके हाथमें मन्दिर का प्रबन्ध दे रखा है। उससे महिलाओं का सतीत्व बचना कठिन हो गया है। उसने मुझको धोखा देकर एक गांवसे आपके मन्दिरमें लाया और योगिनी के रूपमें रख कर मुझसे पत्नी का काम लिया। फिर भी मेरे गर्भ का उत्तरदायित्व अपने ऊपर उसने नहीं लिया और भ्रूण हत्याके अपराधमें मुझे जेल जाना पड़ा। दो वर्षों की सजा काटने के बाद बाहर आने पर मुझे अपना कोई नहीं दीख पड़ा, जिससे मैं वेश्या बन गयी। आपकी दासी एक अभागिनी ?"

नजूमी उस पत्र की ओर बड़े गौरसे देख रही थी और मन ही मन प्रसन्न हो रही थी।

पत्र पढ़ने के बाद जयशंकर बाबूने पूछा—"क्या यह पत्र झूठा है ?"

जगनदास का मुख बन्द था। जयशंकर बाबूने कहा—"अब तुम यहांसे निकलो।"

जगनदास इस पर चुप न रह सका। उसने कहा—"यहां से मैं नहीं जा सकता। मठ और इसकी सम्पत्ति पर मेरा अधिकार है। तुम मरघटमें कुत्तों की रखवाली करो।"

जयशंकर बाबूने कहा—"अच्छा मैं जाता हूं।"

३३

नजूमी आखिर वेश्या ठहरी। उसकी नजरोंमें कब लज्जा और शरम होने को थी। जब उसने देखा कि विजयकांत का दिवाला निकल गया और उसके पास कोई सम्पत्ति शेष नहीं रही तब उसने अपना रंग बदल दिया। अब वह विजयकान्त के सामने ही अपने अन्य प्रेमियोंसे मिलने लगी और नृत्य-संगीत प्रदर्शित करने लगी। विजयकान्त को यह देख कर क्रोध और दुःख दोनों होता था, लेकिन अब नजूमी उसके वश की नहीं थी। मकान नजूमीके नामसे, बैंकके रुपये नजूमीके नाम से और शहर की जो कुछ सम्पत्ति थी सो नजूमीके नाम से। विजयकान्तके नाम पर कुछ नहीं रहा। अगर वह वहांसे हटता है तो एक भिखारीके रूप में और अगर रहता है तो एक गुलामके रूप में।

यद्यपि विजयकान्त इस पतनावस्थामें पहुंच चुका था तथापि उसमें अब भी कुछ स्वाभिमान की भावना शेष रह गयी थी, जिससे वह अपनी पुरानी शान छोड़ने को तैयार नहीं था। जब नजूमी जगनदासके मठसे नृत्य कर वापस आयी तब विजयकान्तने उससे कहा—"नजूमी ? मेरे लिये अब तुम्हारा व्यवहार असह्य हो रहा है। मैं यह नहीं चाहता हूं कि

मेरे सामने ही तुम किसी दूसरे पुरुषसे प्रेम करो। कई दिन मैंने तुमको जगनदासके साथ देखा है। मुझसे स्वीकृति लिये बिना तुम उसके मठमें नृत्य करने क्यों चली गयी? क्या यह उचित है?"

नजूमीने उत्तर दिया—"बाबू जी, आपके पास अब कोई सम्पत्ति शेष न रह गयी। अगर मैं आपकी होकर रहूं तो फिर मेरा निर्वाह कैसे हो सकता है? मैं तो आपकी धर्म पत्नी नहीं हूं कि आपकी दासी बन कर अपना जीवन व्यतीत करूं! आपने अपनी धर्म पत्नी का परित्याग किया, उप पत्नी को जीवित जलाया, फिर मेरी कौन हालत होगी? क्या आप यह नहीं जानते हैं कि वेश्या प्रेम की भूखी नहीं होती है कञ्चन की भूखी होती है। जब तक आपके पास वैभव था, तब तक मैं आपकी दासी थी। आज जब आपके पास लक्ष्मी नहीं रही तब मैं कैसे रह सकती हूं? आप तो मेरे लिये भार स्वरूप हो रहे हैं।"

नजूमी की बातोंसे विजयकान्त की आंखें खुलीं। उसे अब मालूम हुआ कि कुसुम और श्यामाके साथ उसने जो अन्याय किये हैं, उसी का यह फल है। बहुत देर तक मौन रहने के बाद उसने कहा—"नजूमी! तुम्हारी बातोंसे मुझे दुःख हो रहा है। यह मकान, धन आदि मेरे हैं। इन्हीं की बदौलत वेश्याओंमें तुम महारानी गिनी जाती हो और फिर मुझको ही रंग दिखला रही हो।"

नजूमीने हँस कर कहा"—आप बड़े धूर्त बन गये हैं। क्या मुझे भी श्यामा समझ रखे हैं? भविष्य को सोच कर ही तो मैंने सारी सम्पत्ति अपने नामसे करवा ली थी।"

विजयकान्त इसका कोई उत्तर न दे सका। अपने माथे पर हाथ धर वह कुछ सोचने लगा। इतने ही में नजूमी बोल उठी—"क्या आप सोच रहे हैं? अबतो अपनी इज्जतकी रक्षाके लिये अपना रास्ता लीजिये और अगर आप सहजमें नहीं हटेंगे तो मुझे कोई दूसरा उपाय करना होगा।"

विजयकान्त वहांसे चल पड़ा और शान्ति को कन्धे पर रख कर दो तल्लेसे नीचे आया। शान्ति नींदमें थी। वह कह रही थी—"उंहू, उंहू, मैं नहीं खाऊंगी। मुझे सोने दो।"

विजयकान्तने कहा—"बेटी, चलो अब हम लोगोंके लिये यहां स्थान नहीं है।"

उस अर्ध रात्रिमें सड़क पर खड़ा होकर वह सोच रहा था—"लाखों की सम्पत्ति का स्वामी आज एक वेश्याके घरसे कंगाल होकर निकला है। इस नगरमें मुझे ठहरने का भी स्थान नहीं है।"

माघके कड़ाके जाड़ेमें विजयकान्त की हालत दयनीय हो रही थी। घड़ीमें एक बज रहा था और नगर भी शान्त हो चला था। उसके पैर किसी ओर बढ़नेको तैयार नहीं हो रहे थे। इसी बीच शान्तिने कहा—"पिताजी! जबर्दस्त ठंढक पड़

रही है। मेरे दांत खटखट कर रहे हैं। अब विलम्ब होनेसे मैं मर जाऊंगी।"

विजयकान्त की आंखोंमें आंसू भर आये। वह रेलवे स्टेशन आया और ट्रेनसे उसने अहमदाबादके लिये प्रस्थान किया।

३४

स्कूलमें एक ईसाई युवतीने प्रवेश किया। उसने प्रधानाध्यापिकाके हाथमें महात्मा ईसाकी जीवनी, उनके उपदेशोंकी दो पुस्तकें, बाईबिल और ईसाई धर्ममें दीक्षित होने पर मिलनेवाली सुविधाओं की नियमावली दी। उसने इसके बाद स्कूल के छात्र और छात्राओंके बीच भाषण देने की अनुमति मांगी। प्रधानाध्यापिकाने इस प्रकार की आज्ञा देनेमें अनिच्छा प्रकट की। उसकी अस्वीकृति पर ईसाई युवती को निराश हो जाना पड़ा।

प्रधानाध्यापिका ने उसकी ओर देख कर पूछा—"आप उदास क्यों हो गयीं? ये बच्चे महात्मा ईसा को क्या जानें और क्या उनका उपदेश समझेंगे?"

ईसाई युवतीने उत्तर दिया—"नहीं, उदास होने का कोई कारण नहीं है। रास्ते की थकावटके कारण कुछ सुस्ती मालूम होती है।"

प्रधानाध्यापिकाने कहा—"अच्छा चाय मंगवा देती हूं। यह आप लोगों का प्रधान पेय है।"

चपरासी चाय लाने चला गया। बात-चीतमें ईसाई युवती हिन्दू धर्म की बुराइयां उसके सामने रखने लगी और ईसाई

धर्म को श्रेष्ठ प्रमाणित करने का प्रयत्न करने लगी। हिन्दू नारियोंके सम्बन्धमें उसने कहा—"हिन्दू धर्ममें महिलाओं को स्वतन्त्रता नहीं दी गयी है। दीवारोंके अन्दर ही हिन्दू लड़कियों का जन्म होता है, उसीके अन्दर वे बड़ी होती हैं, शादी-विवाह होता है, बूढ़ी होती हैं और उसीके अन्दर मर जाती हैं। बाहरी दुनिया की हवा उन्हें लगने नहीं पाती है। क्या पशु-जीवन इससे अच्छा नहीं है ?"

प्रधानाध्यापिकाने उत्तर दिया—"यह तो आपकी भ्रान्ति है। प्रथा और धर्ममें कौन-सा सम्बन्ध! यह तो सामाजिक दोष है। महिलाओं को पर्दामें रखने की प्रथा कुछ प्रान्तों तक ही सीमिति है, समस्त भारतमें यह रोग नहीं फैला है। इस रोगके लिये भी अंग्रेजी शासन ही दोषी है। उसने देश को अपनी शोषण नीतिके कारण कंगाल बना दिया, जिससे शिक्षा का अभाव हुआ और तरह-तरह की प्रथाएं प्रचलित हुयीं। पर्दा का अर्थ आप गलत लगा रही हैं। दीवारोंके अन्दर बन्द रहना पर्दा नहीं है। मेरी समझमें स्त्रियों का पुरुषों और गुरुजनोंके समक्ष लज्जा शील बना रहना पर्दा है। इससे नारियों में उच्छृङ्खलता नहीं आने पाती है। हमारे लिये चरित्र का स्थान बहुत ही ऊंचा है। हमारी और आपकी स्वतन्त्रामें बहुत बड़ा अन्तर है। हम अपनी स्वतन्त्रतामें चरित्र पर कठिन अनुशासन रखती हैं और आप अपनी स्वतन्त्रतामें चरित्र की परवाह नहीं करती हैं। हिन्दू नारी कभी भी पर पुरुष को अपने रूप-जालमें

फँसाने का प्रयत्न नहीं करती हैं, लेकिन अगर यूरोपीय महिलाओं की ओर पुरुष आकर्षित नहीं होते हैं तो वे अपने सौन्दर्य की भर्त्सना करती हैं।"

जिस समय बातें हो रही थीं उसी समय डाकियाने चिट्ठी-पत्री लाकर मेज पर रख दी। पत्रों पर नजर जाते ही ईसाई युवतीने चकित होकर पूछा—"क्या तुम्हारा नाम प्रभा देवी है?"

प्रधानाध्यापिकाने उत्तर दिया—"हां, मेरा नाम प्रभा है। आप का?"

ईसाई युवतीने बड़ी शीघ्रतामें उत्तर दिया—"मेरा नाम तो कुमारी रोज है।"

कुमारी रोजने यह भी पूछा—"तुम्हारे पति का क्या नाम है और वह कहां है?"

इसका उत्तर प्रभाके मुखसे नहीं निकला। उसकी आंखोंमें आंसू भर आये। कुमारी रोजने पुनः बड़ी उत्सुकताके साथ पूछा—"तुम बोलती क्यों न हो?"

प्रभाने उत्तर दिया—"क्या उत्तर दूं? कई वर्ष पूर्व मेरे पतिदेव ट्रेनमें कट गये। आज उनकी आत्मा कहां है? मैं नहीं बतला सकती हूं।"

कुमारी रोजने पूछा—"उसका नाम क्या था?"

प्रभाने कागज पर लिख दिया—"दयाशंकर।"

दयाशङ्कर का नाम देखते ही कुमारी रोज कुर्सीसे उछल पड़ी और कहने लगी—"वह मरा नहीं है, जीवित है।"

कुमारी रोजके मुखसे दयाशङ्करके जीवित रहनेकी बात सुन कर प्रभाको ऐसा मालूम हुआ कि उसकी खोयी हुई निधि मिल गयी, उसका सर्वस्व प्राप्त हुआ और उसके गये हुये प्राण लौट आये। उसने घबड़ा कर पूछा—"बहन! उन की सूरत कैसी है?"

कुमारी रोजने उत्तर दिया—"उसका कद लम्बा, दोहरा शरीर, लम्बी भुजाएं, ऊँचा ललाट और चौड़ा वक्षस्थल तथा रंग गोरा है।"

इससे प्रभाके मनमें कुछ विश्वास हो आया कि वह दया-शंकर हो सकते हैं। उसने फिर पूछा—"आपको कैसे विश्वास होता है कि वह वही हैं?"

कुमारी रोजने कहा—"उसने ट्रेन दुर्घटना की चर्चा मेरे सामने एक बार की थी और कहा था कि मेरी पत्नी प्रभा देवी ट्रेनमें मुझसे बिछुड़ गयी। यह नहीं कहा जा सकता है कि वह कट गयी या जीवित है। उसने मुझसे यह भी कहा कि उसका घर एक गांवमें था, जिसे कञ्चनपुर कहते हैं।"

अब प्रभा को पूर्ण विश्वास हो आया कि वही दयाशङ्कर उसीके पतिदेव है। उसने उसी समय उससे शिमला चलने का आग्रह किया।

३५

शिमलाके शिखर पर दयाशंकर खिन्न होकर संसार की की विचित्रता पर सोच रहा था। उसके हृदयमें भावनाएं उठ रहीं थीं—"क्या सत्य और सदाचार का इस संसारमें कोई मूल्य नहीं है। कुमारी रोजने मेरे साथ कैसा व्यवहार किया है। मैंने उसके चरित्र की रक्षा की है, इसलिये मुझे नौकरीसे हटना पड़ा है। लेकिन इसके लिये दुःख क्या! सत्य-पथ का पथिक भी कहीं विघ्न बाधाओंसे घबड़ाता है? वह तो अपनी धुनमें बड़े उत्साहके साथ बढ़ता ही जाता है। अन्तमें उसे अवश्य सफलता मिलती है। अभी तो आवेशमें आकर कुमारी रोजने ऐसा किया है, लेकिन शान्त होने पर वह स्वयं अपने कार्यों पर पश्चाताप करेगी और मुझसे क्षमा मांगेगी।

जिस समय वह इन विचारोंमें निमग्न था, उसी समय कुमारी रोजने प्रभाके साथ उसके कमरेमें प्रवेश किया। दयाशंकर पर दृष्टि जाते ही प्रभा मूर्तिवत खड़ी हो गयी और दयाशंकर कागजमें अंकित चित्रके समान शान्त रहा। उन दोनोंके बीच कुमारी रोज एक दर्शकके समान मालूम हो रही थी, जो मूर्ति और चित्र दोनोंकी ओर बारबार देख रही थी।

अन्तमें कुमारी रोजने ही वहां की शान्ति भंग की और दयाशंकरसे प्रश्न किया—"क्या तुम इसे पहचानते हो ?"

उत्तर देते समय दयाशंकर का गला भर आया। इतने ही में प्रभा आकर उसके पैरों पर गिर पड़ी। उसके आंसूसे कुमारी रोज का हृदय पिघल गया। दयाशंकरने देखा कि, प्रभा की सूरत बदल गयी है। उसके वियोगमें बेचारी प्रायः झुलस-सी गयी है।

उधर प्रभा सोच रही थी—"यह मेरे पूर्व जन्मके पुण्य का फल है कि मरकर भी मेरे पतिदेव आज मुझे जीवित मिले हैं। आज मेरी विपत्ति का अवसान हो गया।"

उसने भी दयाशंकरमें पूर्व की कान्ति नहीं देखी। चिन्ता से उसका शरीर काला पड़ गया था। अपनी ही स्थितिमें उसे पाकर उसको दुःख हुआ।

प्रभाने कुमारी रोजको धन्यवाद देते हुये कहा—"यह आप ही की कृपा है कि आज हम दोनों मिले हैं। अगर आप न होतीं, तो हम दोनों एक दूसरे को मृत समझ कर जीवन भर आंसू ही बहाते रहते। आपका यह उपकार मैं नहीं भूल सकती हूं। आजन्म मैं आपकी ऋणी रहूंगी।"

दयाशंकरने भी उसे धन्यवाद देते हुये कहा—"वास्तवमें कुमारी रोज की ही कृपा है कि, आज हमलोगों का पुनर्मिलन हुआ है।"

कुमारी रोजने मुस्कुराते हुये कहा—"अपना धन्यवाद रहने दो। मुझे तुम्हारी बधाई की आवश्यकता नहीं है।"

इसके बाद प्रभाने दयाशंकरसे कहा—"चिन्ता और वियोग के कारण यह शरीर जल चुका है। किन्तु; इस जले हुये शरीरमें भी प्राण रह गये ; यह आश्चर्य का विषय है। मैं नहीं कह सकती हूं कि कैसे प्रभात होता था और कैसे सन्ध्या होती थी और किस तरह वियोग तथा दुःख की इतनी लम्बी अवधि व्यतीत हुई। मुझे तो केवल आपका ध्यान रहता था, उसी ध्यानमें मेरी विपत्ति का अन्त हुआ है।"

चम्पा की आत्महत्या और वकील साहबके वैराग्यके समाचारसे दयाशंकर को अति दुःख पहुंचा। श्यामाके विषयमें ज्ञात होते ही उसकी आत्मा को असह्य पीड़ा हुई। उसने कहा—"इसमें उस बेचारी का क्या दोष? यह तो दोष समाज का है, जिसने उसे भ्रष्टा बना दिया है। जिस श्यामाके लिये कितने परिवार बर्बाद हो गये, आखिर वह श्यामा स्वयं बर्बाद हो गई। अगर उसका पता चले तो उसका उद्धार किया जा सकता है।"

श्यामा का नाम सुनते ही कुमारी रोज बोल उठी—"मैं तो उसे जानती हूं। वह मुझे रंगूनमें मिली थी। उस समय वह बहुत ही कष्टमें थी। मैंने उसे ईसाई धर्म स्वीकार करने को कहा, लेकिन उसने अस्वीकार कर दिया।

—:०:—

३६

जगन दास बेहोश होकर नजूमीके बिस्तर पर गिर गया। शोकसे उसका चेहरा काला पड़ गया था। ललाटसे लेकर पैर तक पसीना छूट रहा था। नजूमीने पूछा—"क्या आज आपके मामले का फैसला हो गया?"

जगनदासने उत्तर दिया—"हां, हो गया, फैसला सुना दिया गया।"

नजूमी—"क्या हुआ?"

जगनदास—"होगा क्या? वही हुआ जो होना था। आज कहीं पर न्याय है? अन्यायसे यह धरातल रसातलमें चला गया। सर्वत्र अन्याय का राज्य है, उसीका बोल-बाला है।"

नजूमी—"क्या अन्याय, अन्याय आप बोल रहे हैं? मैं पूछती हूं कि फैसला क्या हुआ और आप अन्याय अन्याय कर रहे हैं।"

जगनदास—"तुम अब भी नहीं समझ सकी। अन्यायी जजने मठ और उसकी सारी सम्पत्ति पर जयशंकर बाबू का अधिकार घोषित कर दिया। मेरा उस पर कोई हक नहीं कहा गया।"

नजूमी—"आप कह रहे थे कि, रजिस्ट्री की शर्तें बहुत ही अच्छी हैं। मठसे मुझे कोई निकाल नहीं सकता है।"

जगनदास—"तुम भोली भाली औरत हो। तुम्हें क्या मालूम कि इस संसारमें कैसे कैसे धूर्त, बेईमान और धोखे-बाज भरे हैं? जयशंकर भी उन्हीं धूर्तों और बेईमानोंमें एक है। रजिस्ट्रीमें उसने लिखा था कि मैं अपनी सारी सम्पत्ति मठ को लिखता हूं और उसका पुजारी जगनदास को नियुक्त करता हूं। जगनदास का पुजारी बना रहना मेरी इच्छा पर निर्भर करता है। जिस दिन मैं चाहूंगा, उस दिन जगन-दास को हटा दूंगा।

नजूमी—"मालूम होता है कि इसी पर आप की हार हुई है।"

जगनदास—"हां, इसी पर मेरी हार हुई है। रजिस्ट्री की शर्तों को देख कर ही जयशंकरके कलुषित हृदय का तुम पता लगा सकती हो। वह तो व्यर्थ ही साधु हुआ। ऐसे नराधमों से तो साधु समाज कलंकित हो गया है। श्मशानमें भी रह कर सम्पत्तिके स्वामित्व की लालसा उसके हृदयसे नहीं गयी। जब उसका हृदय इस संसारमें लिप्त है, तब उसने साधु का वेश क्यों धारण किया?"

नजूमी—"उन्हें तो आपके समान साधु होना चाहिये था।"

जगनदास—"हां, मेरे समान उसे तपस्वी बनना चाहिये

था। जब हृदयसे काम, क्रोध, मोह और मद नहीं गया, तब साधु कैसा ? और देखो, उसने मुझे ही भरे न्यायालय में चरित्रहीन प्रमाणित कर दिया। कामिनी नामक किसी स्त्री का पत्र उसने न्यायाधीशके समक्ष उपस्थित कर दिया। उस बेहूदीने उस पत्रमें अपने साथ मुझे भी पतित बनाया है।"

नजूमीने मुस्कुरा कर पूछा—कामिनी कौन है ?"

जगनदासने खिन्न शब्दोंमें उत्तर दिया—"मैं क्या जानूं कि वह कौन निर्लज्ज औरत है ? उसने मेरे ऐसे सन्त के विरुद्ध चरित्रभ्रष्टता का प्रमाण पत्र भेजा है।"

नजूमी—"वही पत्र न जिसे वकील साहबने कृष्णाष्टमीके दिन मन्दिरमें आपके समक्ष रखा था ?"

जगनदास—"हां, हां, वही पत्र ! तुम्हारे सामने ही तो उसने पढ़ा था।"

नजूमी—"हां, मैं समझ गयी। मुझे भी आश्चर्य हो रहा है कि आप जैसे वैरागी पर ऐसा कलंक ?"

जगनदास—"चार दिन पूर्व मैंने तुम्हें सोनेके कुछ आभूषण और दस हजार रुपये दिये थे, सुरक्षित हैं न ?"

नजूमी—"बिल्कुल सुरक्षित हैं। आप मुझ पर विश्वास रखें। मैं अपना धर्म नहीं छोड़ सकती हूं।"

जगनदास—"तुम पर मेरा विश्वास है।" इसके बाद उसने एक ग्लास जल पीकर अपने गले और हृदयको ठंढा किया। फिर नजूमी की ओर उसने देखा। नजूमी उसके समीप आकर बैठ

गयी और कंधे पर हाथ रख कर कहने लगी—"मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूं।"

जगनदासने कहा—"पूछ सकती हो।"

नजूमीने पूछा—"आपने अपना घर क्यों छोड़ा ?"

जगनदासने उत्तर दिया—"संसारसे मेरा मन ऊब गया। इसीसे परिवार का मोह माया त्याग कर मैंने वैराग्य ले लिया।"

नजूमीने कहा—"नहीं, आप मुझे धोखा दे रहे हैं। वास्तव में एक नारीके प्रेम और हृदय का कोई मूल्य नहीं है। आज भी आप मुझे धोखेमें डाल रहे हैं। अगर आपका मुझ पर विश्वास है, तो अपने वैराग्य का मुझे सच्चा कारण बतलाइये।"

जगनदाससे कोई उत्तर न पाकर वह मुंह बना कर बैठ गयी।

जगनदासने कहा—"क्या तुम रंज हो गयी ? इस संसारमें आज तुम्हारे अलावा मेरा कोई नहीं है।"

नजूमी उसकी ओर देखती रही।

जगनदासने कहा—"नजूमी ? मेरा नाम जगनदास नहीं है। मेरा वास्तविक नाम गोविन्द है। अपनी बाल्यावस्थासे ही चोरी करना और डाका डालना मैंने आरम्भ किया तथा अठारह-उन्नीस वर्ष की अवस्थासे सुन्दर महिलाओं का अपहरण कर उन्हें बेचना मेरा प्रमुख पेशा हो गया। कई बार मैं

पकड़ा गया और मुझे जेल की सजा भी हुई। लेकिन, जेलमें भी अपनी करामातसे मैं बाज नहीं आया। राख को सिन्दूर, मिट्टी को मिठाई और कंकड़ पत्थर को फल-फूल बना कर जेलके बाबुओं और सिपाहियों को मैं दिखाया करता था। इससे वे मुझ पर प्रसन्न रहा करते थे। एक दिन फाटकके बाहर कुछ काम हो रहा था। उसी समय मैंने सिपाहियों को चकमा दिया और चम्पत हो गया। इस प्रकार मैं ने अपनी दस वर्ष की सजा छः महीने में ही खत्म की। सरकारने मुझे पकड़ने वालों को पारितोषिक देने की घोषणा की। मेरी खोज अभी तक जारी है। लेकिन; मैं ने ऐसा वेश धारण किया और ऐसे समाज में आकर मिल गया कि पुलिसके बाप भी मुझे नहीं पकड़ सके।"

"मैं जगनदासके नामसे संसारमें निर्भय होकर विचरने लगा। जहां जाता था, वहीं मेरा सम्मान होता था। जयशंकर को भी मैं ने धोखा दिया। उसके दरवाजे पर एक छोटा मंदिर था। उसके लिये उसको एक पुजारी की आवश्यकता थी। जब भिक्षाटन करता हुआ मैं उसके यहां पहुंचा, तब उसने उस मन्दिरमें मुझे रहने को कहा। लेकिन मैं ने अनिच्छा प्रकट की और कहा कि मैं हिमालय का रहने वाला हूं, वहां का आनन्द छोड़ कर इस कोलाहलके बीच कौन रहे, इस पर मेरे प्रति उसकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी। उसने हठ कर मुझे वहां रख लिया। पीछे अपनी धर्मपत्नीके मर जाने के बाद मेरी सलाह

से उसने गांवसे कुछ दूरी पर एक मठ बनवाया और उसका स्वामी मुझे नियुक्त किया। यह है मेरी प्रारम्भिक जीवनी।"

नजूमीने कहा—"आपने एक बात नहीं बतलायी ?"

जगनदासने पूछा—"क्या ?"

नजूमीने कहा—"आपने कामिनी का अपहरण कैसे किया ? विजयकान्त की बात मुझे सत्य मालूम पड़ती है। उसीने उसके सम्बन्धमें मुझे कहा था। वह कौन थी ?"

जगनदास इस प्रश्न पर मुस्करा उठा—"अच्छा उसकी भी कहानी सुन लो। वह युवती बड़ी भोली-भाली थी और रूप की तो खान थी। मठाधीश होने पर भी जयशंकर को धोखामें डालने के लिये मैं भिक्षाटन करने के लिये कभी-कभी गांवोंमें जाया करता था। एक बार कञ्चनपुरमें एक दरवाजे पर जब मैं भीखके लिये गया तब वहां परीके समान एक सुन्दरी को देख कर मैं चकित हो गया। उसके नयन-बाणसे मैं बुरी तरह आहत हो गया। मैंने उस गांवमें धुनी लगा दी और वहीं मिट्टी की मिठाई, लौंग, सुपारी आदि बनाने की अपनी करामात दिखलानी आरम्भ की। लोगों का मुझ पर विश्वास हो गया। एक रात वही सुन्दरी मेरे पास आयी और जेलसे अपने पति की मुक्तिके लिये उसने मुझसे आशीर्वाद मांगा। मैंने उसे दूसरे दिन बुलाया और चकमा देकर अपने मठमें ले आया। इसके बाद की कहानी बड़ी ही मार्मिक है। उसे रहने दो।"

नजूमीने पूछा—"उस स्त्री का नाम क्या था ?"

जगनदास ने हँस कर उत्तर दिया—"उसी का नाम कामिनी था।"

नजूमी—"आप मुझे पहचानते हैं ?"

जगनदास इस प्रश्न पर चौंक पड़ा। उसने बड़े गौरसे उसकी ओर देखा, उसकी सूरत कामिनीसे मिल रही थी, लेकिन वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि वह वही कामिनी है या दूसरी कोई औरत ?"

नजूमीने कहा—"मैं ही कामिनी हूं। मेरे ही नयन-बाणसे आप आहत हुये थे और उस अपराधमें आपने मुझे लूटा था। आप ही के कारण मैं आज यह नारकीय जीवन व्यतीत कर रही हूं। उस दिन मन्दिर और कोर्ट में मेरा ही पत्र पढ़ा गया था। मेरा ही पत्र आपके चरित्रके लिये प्रमाण पत्र था।"

अब तो जगनदास का चेहरा और भी सूख गया। काटो तो शरीरमें खून नहीं। कांपते हुये स्वरमें उसने कहा—"देवि ! मुझे क्षमा करो। अब इस दास पर दया करना तुम्हारा धर्म है।"

जगनदास को पूर्ण विश्वास हो गया कि अब उसका कल्याण नहीं है। किन्तु; अन्तिम बार भी वह अपने प्रयत्नसे बाज नहीं आया। बहुत ही नम्र भावसे उसने कहा—"मुझे तुम्हारी बड़ी चिन्ता थी। तुमसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब हम लोगों का भावी-जीवन एक साथ व्यतीत हो सकेगा।"

नजूमी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह उठ कर बाहर आयी और नौकरसे पासके थानेमें खबर भेज दी। दारोगा उसी समय कुछ सिपाहियोंके साथ वहां पहुंचा। उन्हें देखते ही जगनदासका होश उड़ गया। उसने दारोगासे कहा - "इस वेश्याके कहने पर आप मुझे गिरफ्तार न करें। मैं जानता भी नहीं हूं कि गोविन्द कौन है ? मेरे समान साधु पुरुष को एक चोर-डाकूके सन्देह में गिरफ्तार नहीं किया जाय। आप का कल्याण होगा।"

दारोगाने कहा—खैर इसकी सफाई तो तुम अदालत में देना। अभी तो तुमको मेरे साथ चलना होगा।"

जगनदास—"आप इस संत पर कृपा कीजिये और दस हजार रुपये लेकर मुझे छोड़ दीजिये।"

दारोगाने पूछा—"रुपये कहां हैं ?"

जगनदासने नजूमी की ओर संकेत किया। नजूमीने क्रोध-पूर्ण शब्दोंमें कहा—"नीच ! मेरी ओर संकेत करने में तुमको लज्जा नहीं आती है। क्या मेरा घर इम्पीरियल बैंक है, जहां तुम्हारा धन जमा है।"

उसकी बातों पर दारोगाको हँसी आ गयी। उसने कहा—"तुम्हारा घर तो इम्पीरियल बैंकसे भी बढ़ कर है। वहां जो धन जमा होता है, वह तो वापस होता है, लेकिन तुम्हारे घरमें जो धन जमा होता है, वह कभी वापस नहीं होता है।"

नजूमीने मन्द मुस्कानमें उसका समर्थन करते हुये कहा—"हुजूर इसको पकड़वाने का पारिषोतिक मुझे कब मिलेगा ?"

दारोगा ने कहा—"पारितोषिक तो जगनदास ने तुमको पहले ही दे दिया है। आगे का पारितोषिक मेरे लिये रहने दो।"

इसके बाद जगनदासके हाथोंमें हथकड़ी लगा कर दारोगा उसे थाना ले गया। अदालतमें उस पर मामला चला, जहांसे उसे आजन्म कालापानी की सजा हुई।

३७

ज्योंही प्रेमनगरके ग्रामीणों को दयाशंकर और प्रभाके आगमन का समाचार मिला, त्योंही उनसे मिलने के लिये मन्दिर पर वे दौड़ पड़े। अपनी पुत्री और दामाद को पाकर जयशंकर बाबू को पुनः एक क्षणके लिये मोहने घेर लिया। उन्हें देख कर जयशंकर बाबूको अपार हर्ष हुआ और आनन्दके कारण उनकी आंखोंसे आंसूकी धाराएं प्रवाहित होने लगीं। किसीने दयाशंकरके कार्यकी प्रशंसा की और किसी ने निन्दा।

दो-चार दिन जब प्रेमनगर में बीत गये, तब एक दिन जयशंकर बाबूने दयाशंकरसे कहा—"वैराग्य लेने के पहले मेरी इच्छा थी कि आप मेरी सारी सम्पत्ति का अधिकारी बनें। इस सम्बन्धमें मैंने आपको सूचित भी किया था, लेकिन आपने स्वीकार नहीं किया। उसके बाद का दृश्य आपकी आंखोंके समक्ष है। मैं श्मशान गया और मन्दिर का प्रबन्ध जगनदास के हाथमें सौंप दिया, लेकिन अपनी करतूतसे वह भी यहांसे बाहर हुआ। अब आप आ गये, इसलिये इसकी देखरेख का भार आप पर आ पड़ा है"

दयाशंकरने उत्तर दिया—"मुझे सम्पत्ति की कोई आव-

श्यकता नहीं है। अगर सम्पत्ति का प्रलोभन मेरे हृदयमें होता तो आर्थिक प्रश्न को लेकर मुझे इतनी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। मैं चाहता हूं कि आप की इस विशाल सम्पत्ति का उपयोग जनसेवामें किया जाय।"

जयशङ्कर बाबूने पूछा—"इसकी योजना मुझे बतलाइये।"

दयाशङ्करने उत्तर दिया—"एक अनाथालय बनवाया जाय, जिसमें निम्नांकित विभाग खोले जांय :—

(क) अनाथ बच्चों और महिलाओं को रखा जाय।

(ख) अनाथ बच्चों की शिक्षाके लिये एक स्कूल खोला जाय, जिसमें दस्तकारियां भी सिखलायी जांय।

(ग) वेश्याओं को अनाथालयमें स्थान दिया जाय और उन्हें भी हस्तकौशल सिखलाया जाय।

(घ) सार्वजनिक औषधालय खोला जाय और (ङ) समाजकी कुरीतियोंको दूर करने लिये एक प्रचार विभाग खोला जाय।

इस अनाथालय का अधिष्ठाता आप रहें और कार्यकर्ताके रूपमें मैं इसकी देखरेख करूंगा।

दयाशंकर का विचार जयशंकर बाबू को अच्छा लगा। उन्होंने उसका समर्थन करते हुये कहा कि इससे धनका सुन्दर उपयोग और क्या हो सकता है? अनाथों की सेवासे बढ़ कर संसारमें कौन-सी तपस्या बड़ी है। समाजके विच्छिन्न अंगों को अगर पुनः उसमें जोड़ दिये जांय तो इससे बढ़कर दूसरा कौनसा

उपकार हो सकता है ? वेश्याओं को अगर नरकसे निकाल कर जीवन-यापनके लिये उन्हें दूसरे साधन दिये जांय, तो इससे बढ़कर दूसरा कौन-सा सद्कार्य हो सकता है ? कार्यारम्भ आज ही हो जाना चाहिये, क्योंकि विलम्ब होनेसे मनुष्य का उत्साह कम हो जाता है। कार्यकर्ताओं को लाने का भार आप पर है, किन्तु कार्यकर्ता योग्य और सुचरित्र हों।

अनाथालय की नींव पड़ गयी। उसे जल्द तैयार करने के लिये जोरोंसे काम होने लगा।

इसी बीच एक सप्ताहके लिये दयाशंकर कञ्चनपुर गया। उसे देखते ही लोगों को आश्चर्य हुआ, क्योंकि लोगोंने पहले सुना था कि ट्रेन दुर्घटनामें उसकी मृत्यु हो गयी। प्रेमनगरके समान ही यहां भी वह अपने ग्रामवासियोंसे घिर गया। लेकिन; यहां और वहांमें अन्तर था। वहां सब लोग उसे प्रेम और सम्मान की दृष्टिसे देखते थे और यहां लोग उसे उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टिसे देख रहे थे। अभी भी अपने ग्राम-वासियों की नजरोंमें वह अवारा और लम्पट था। अभी भी उसपर श्यामाको भ्रष्ट करनेका दोष मढ़ा जा रहा था और लोग उसे समाज का शत्रु समझ रहे थे। समाज का एक बहिष्कृत व्यक्ति समझ कर यहां का प्रत्येक मनुष्य उससे घृणा कर रहा था।

दयाशंकर वहांकी गतिविधिका बड़ी गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर रहा था। ग्रामीणों के व्यङ्ग वचनसे उसे वहां की स्थिति

समझने में देर न लगी। उसके सगे भाई, भाभी तकने उससे एक बात नहीं पूछी। इससे उसे अवश्य दुःख हुआ, लेकिन उसकी दृष्टिमें यह कोई नयी बात नहीं थी, जिसके लिये उसे अधिक क्षोभ करने की आवश्यकता थी। अपने कुछ मित्रोंसे वह मिलना चाहता था, पर वे सबके सब बाहर अपनी जीविकाके उपार्जनमें लगे थे। दो ढाई घण्टे तक कञ्चनपुरमें रहनेके बाद वह वहांसे चल पड़ा।

उपकार हो सकता है ? वेश्याओं को अगर नरकसे निकाल कर जीवन-यापनके लिये उन्हें दूसरे साधन दिये जांय, तो इससे बढ़कर दूसरा कौन-सा सद्कार्य हो सकता है ? कार्यारम्भ आज ही हो जाना चाहिये, क्योंकि विलम्ब होनेसे मनुष्य का उत्साह कम हो जाता है। कार्यकर्ताओं को लाने का भार आप पर है, किन्तु कार्यकर्ता योग्य और सुचरित्र हों।

अनाथालय की नींव पड़ गयी। उसे जल्द तैयार करने के लिये जोरोंसे काम होने लगा।

इसी बीच एक सप्ताहके लिये दयाशंकर कञ्चनपुर गया। उसे देखते ही लोगों को आश्चर्य हुआ, क्योंकि लोगोंने पहले सुना था कि ट्रेन दुर्घटनामें उसकी मृत्यु हो गयी। प्रेमनगरके समान ही यहां भी वह अपने ग्रामवासियोंसे घिर गया। लेकिन; यहां और वहांमें अन्तर था। वहां सब लोग उसे प्रेम और सम्मान की दृष्टिसे देखते थे और यहां लोग उसे उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टिसे देख रहे थे। अभी भी अपने ग्रामवासियों की नजरोंमें वह अवारा और लम्पट था। अभी भी उसपर श्यामाको भ्रष्ट करनेका दोष मढ़ा जा रहा था और लोग उसे समाज का शत्रु समझ रहे थे। समाज का एक वहिष्कृत व्यक्ति समझ कर यहां का प्रत्येक मनुष्य उससे घृणा कर रहा था।

दयाशंकर वहांकी गतिविधिका बड़ी गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर रहा था। ग्रामीणों के व्यङ्ग वचनसे उसे वहां की स्थिति

सकता है। फिर भी रुपये के बिना समस्याके समाधान की चेष्टा की जायेगी।"

उसने चेतगंजमें एक कमरा किराया लिया और उस पर मोटे कागज पर—"महिला कला-निकेतन" लिख कर लटका दिया। उस ओरसे चलने वालों का ध्यान सहसा उस ओर आकर्षित हो जाता था। कुछ लोग दो-चार मिनट खड़े होकर उसके उद्देश्य आदि जानने के लिये श्यामा से बातें करते थे। श्यामा उन्हें समझाती थी कि कला-निकेतन का उद्देश्य महिलाओं को स्वावलम्बी बनाना है। इसमें अभी तो चर्खे पर सूत कातने का कार्यारम्भ किया जायेगा, परन्तु बादमें कपड़े की सिलाई, कसीदा काढ़ने, कपड़े की गुड़िया बनाने, कागज के फूल बनाने आदि की शिक्षा दी जायेगी।"

उसका उद्देश्य अवश्य महान था। इसलिये लोग उसकी प्रशंसा करते थे।

श्यामाने बनारस चर्खा संघ से पांच चर्खेके लिये अनुरोध किया। चर्खे उसे मुफ्तमें मिल गये और कुछ कपास भी मिली। उसने कार्यारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे लोगोंके द्वारा इसका प्रचार होने लगा। एक डेढ़ महीनेमें और महिलाएं आ गयीं। अब पांचों चर्खे चलने लगे। इससे निकेतन स्वावलम्बी हो गया। पीछे और भी महिलाएं आयीं, उनको भी चर्खा चलाने का काम दिया गया। इसके अतिरिक्त कपड़े पर बेल बूटा काढ़ने की भी शिक्षा दी जाने लगी। आर्थिक स्थिति अच्छी

होने पर कपड़े सीने की दो मशीनें भी आ गयीं। अब उस छोटे-से कमरेमें काम चलना कठिन हो गया। इसलिये उस कमरे को छोड़ कर पासमें ही एक दो तल्ला पूरा मकान ले लिया गया। नीचे तो निकेतन का काम होता था और ऊपरमें महिलाएं रहती थीं।

थोड़े ही समयमें निकेतन का काम सुचारु रूप से चलने लगा। उसकी प्रशंसा नेताओंने भी की और अखबारोंमें भी उसके सम्बन्ध में समाचार प्रकाशित हुये। इससे बाहरी लोगों का भी ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। दूसरे प्रान्त वाले जब काशी आते थे, तो उनमें से कुछ लोग तो अवश्य कला-निकेतन को देखने जाते थे और उसकी प्रशंसा करते हुये अपने घर लौटते थे।

कुसुम भी महिला कला-निकेतनकी प्रशंसा लोगोंके मुख सुन चुकी थी और "आज" में भी उसके संबंधमें कई लेख पढ़े थे। उसकी भी इच्छा कला-निकेतन को देखनेकी हुयी। इसलिये जब वह वैशाख अमावस्या को सूर्य ग्रहण स्नान करने काशी गयी, तब कला-निकेतन को भी देखने गयी। वहां श्यामाको देख कर उसे आश्चर्य हुआ। यद्यपि अखबारोंमें उसने "श्यामा" का नाम पढ़ा था; तथापि उसे यह विश्वास नहीं हुआ था कि उसकी पूर्व परिचिता श्यामा ही निकेतन की संचालिका है। श्यामाने तो उसको नहीं पहचाना, परन्तु वह तो उसे अच्छी तरह पहचान गयी।

कला-निकेतनके निरीक्षणके बाद कुसुम श्यामाके साथ उसके दफ्तरमें जाकर बैठ गयी। निकेतनके प्रबन्ध आदिके सम्बन्धमें बातें होने के बाद कुसुमने उससे पूछा—"बहन, तुम मुझको पहचानती हो?"

श्यामा इस प्रश्नको सुन कर संकोचमें पड़ गयी। वह गौरसे उसको देखने लगी, परन्तु पहचान नहीं रही थी। उसने विनीत भावसे उत्तर दिया—"बहन, मैं तो नहीं पहचान रही हूं।"

कुसुमने मुस्कुराते हुये कहा—"अब कैसे पहचानोगी? मेरा नाम कुसुम है।"

"कुसुम" नाम सुनते ही श्यामा उससे प्रसन्नतापूर्वक मिली, उसका समाचार पूछा और यह भी कहा—"मेरा धन्यभाग जो तुम्हारे दर्शन हुये?"

इसके आगे वह बोल न सकी। कुसुमने देखा उसके नेत्र सजल हो गये। श्यामा को सांत्वना देते हुये उसने कहा—"बहन, अतीतके सुख-दुःख को भूला देने पर ही मनुष्य सुखी रह सकता है। उनके स्मरणसे क्लेशके सिवा कुछ हाथ नहीं लगता है। मनुष्य परिस्थिति का दास होता है। इस स्थितिमें तुम्हारा दोष देना या उपहास करना अपनी मूर्खता प्रमाणित होती है। मुझे तुम्हारा काम देख कर अति प्रसन्नता हुयी है। समाजके सामने तुमने एक आदर्श उपस्थित किया है। तुमने अपना उद्धार स्वयं अपने हाथोंसे किया है, मुझे इसके लिये बड़ी प्रसन्नता है। घर लौटने पर मैं इसकी चर्चा करूंगी।"

श्यामाने उससे कहा—"चर्चा करने की क्या आवश्यकता है ? किसीसे न कुछ लेना है और न कुछ देना, इससे केवल मेरी निन्दा होगी।"

कुसुमने उत्तर दिया—निन्दा की परवाह तुम क्यों करती हो ? सार्वजनिक जीवनमें सच्चे पथ पर रह कर निन्दा और अस्तुति की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। सेवा का व्रत लेकर तुमने अपने जीवन की कालिमा को धो डाला है। किसी प्रकार का संकोच तुम अपने मनमें न करो।"

श्यामा ने पूछा—"बहन, दयाशङ्कर जी का कोई पता चला ?"

कुसुमने कहा—"हां, हां, वे तो शिमलामें थे। प्रभा को उनके विषयमें पता चला तो वह उनको बुला कर प्रेम नगरमें आ गयी है। वकील साहब भी अब श्मशानसे मन्दिरमें लौट आये हैं। दयाशंकर की सलाहसे प्रेम नगरमें अनाथालय बनवा रहे हैं, जो अपने ढङ्ग का देशमें अकेला होगा। मन्दिर की सारी सम्पत्ति उसीमें लगायी जायेगी।"

दयाशङ्करके जीवित रहने के समाचारसे उसको बड़ी प्रसन्नता हुई। मनही मन उसने भगवान को धन्यवाद दिया और प्रार्थना की कि प्रभा का सौभाग्य अचल रहे और दयाशङ्कर को अपने जीवनमें सदा सफलता मिलती रहे।

इसके बाद उसने संकोचके साथ पूछा—"बहन, विजयकान्त कहां है ?"

कुसुमने उत्तर दिया—"उन्होंने भागलपुर शहर की अपनी सारी सम्पत्ति नजूमीके पीछे बर्बाद कर दी और गांव की जमीन भी बन्धक रख दी। पर हमारा लड़का कुसुमाकर बहुत ही चतुर निकला। उसने बन्धक रखी हुयी सारी जमीन वापस कर ली है। विदेशी दवाइयों की एजेंसियां उसने ले रखी है, जिससे काफी आय होती है। अब मैं मायके में न रह कर ससुराल में ही रहती हूं। हां, नजूमीने उन (विजयकान्त) को अपने यहांसे हटा दिया, उसके बाद वे कहां गये कुछ पता नहीं।"

श्यामाने पूछा—"और शान्ति ?"

कुसुमने कहा—"उसका भी पता नहीं, पर नजूमीके यहां नहीं है।"

इस पर श्यामा रो पड़ी। कुसुमने कहा—"बहन ! मैं चलती हूं।"

श्यामाने कहा—"अगर मैं तुमको रहने को कहती हूं तो संकोच मालूम होता है और जाने को कहती हूं तो अनुचित होता है।"

कुसुमने कहा—"संकोच की कोई बात नहीं, तुम मेरी बहन हो। अगर मैं तुम्हारे यहां नहीं रहूंगी, तो किसके यहां रहूंगी ? परन्तु आज मेरा घर लौटना आवश्यक है।"

श्यामाने कहा—"अच्छा चलो।"

दोनों साथ चलीं। मकानसे बाहर आने पर कुसुमने कहा—"अब तुम लौट जाओ, मैं जाती हूं।"

श्यामाने कहा—"यह भी कोई बात है? चलो ट्रेनमें चढ़ा कर मैं वापस आजाऊंगी।",

लगभग एक घण्टा दिन शेष रह गया था। श्यामा और कुसुम एक बरगदके पेड़के नीचे से गुजर रही थीं। उस वृक्षके नीचे एक अन्धा बैठा हुआ बोल रहा था—"देदे राम, दिलादे राम, देने वाला सीताराम।" और इसके बाद मनुष्यों की आहट मिलते ही वह हाथ पसार देता था। उसकी आवाज सुनकर कुसुमने कहा—"इसके करुणापूर्ण शब्दोंसे मेरा कलेजा फट रहा है। इच्छा होती है कि इसे कुछ दे दूं।"

श्यामाने कहा—"दे दो कुछ।"

दोनों वहीं खड़ी हो गयीं। अन्धा की अवस्था लगभग चालीस-पैंतालीस वर्ष की रही होगी। उसका केश बढ़ गया था। उसकी दाढ़ी और मूछ बढ़ी हुई थी। उसके शरीर पर मांस नहीं था; अस्थि-पञ्जर ही शेष रह गया था। उसके साथ लगभग दस वर्ष की एक सुन्दर लड़की बैठी थी। उसके मुख पर दीनता की छाप देख कर सहज ही दया आ जाती थी।

कुसुमने श्यामासे धीरेसे कहा—"इस अन्धे की आकृति तो उनसे मिलती-जुलती है।"

श्यामाने कहा—"विजयकान्त से।"

कुसुमने कहा—"हां उन्हीं से।"

श्यामाने अन्धे की ओर गौरसे देखनेके बाद कहा—"हां,

आकृति तो उससे मिलती है। पूछताछ करनी चाहिये।"

कुसुमने उस लड़कीसे उसका परिचय पूछा। उत्तरमें लड़की ने कहा—"एक भिखमंगे की लड़की का कौन-सा परिचय हो सकता है?"

कुसुमने उस अन्धे से पूछा—"आप का क्या नाम?"

अन्धेने उत्तर दिया—"लोग सूरदास तो कहते हैं।"

कुसुम—"आप का घर?"

अन्धा—इसी वृक्षके नीचे, जहां हमारी पावस, शरद्, बसन्त और ग्रीष्म की ऋतु व्यतीत होती है।"

कुसुम—"आप की आंखें कैसे नष्ट हुईं।"

अन्धा—"कर्म की गति।"

कुसुम—"फिर भी कोई कारण तो होगा?"

अन्धेने उत्तर दिया—"अहमदाबादमें एक सूती मिलमें मैं सुपरवाइजर का काम करता था। एक दिन अचानक मशीनका एक पूर्जा निकल कर मेरी आंखों पर आ गिरा, जिससे मेरी आखें नष्ट हो गयीं।"

कुसुमने पूछा—"उसके पहले आप क्या करते थे?"

अन्धे ने खिन्न होकर उत्तर दिया—"अनाचार और अत्याचार।"

कुसुमने प्रश्न किया—"फिर भी कोई पेशा तो अवश्य रहा होगा? कुछ काम तो अवश्य करते रहे होंगे?"

अन्धेने क्रोधित होकर उत्तर दिया—"तुम क्यों मेरे पीछे

पड़ी हो ? मुझे शान्ति से रहने दो। अतीत की घटनाओं का स्मरण करा कर मुझे पीड़ा क्यों पहुंचा रही हो ?"

श्यामाने पूछा—"यह लड़की आप की है?" इस प्रश्नपर वह अन्धा और भी आग बबूला हो उठा। अपने उत्तरमें उसने कहा—"मेरी नहीं तुम्हारी लड़की है ?"

इस उत्तरपर श्यामा हँस पड़ी। उसने पुनः कहा—"मैं तो नहीं कहती हूं कि मेरी ही पुत्री है, आप की ही है, लेकिन फिर भी इसकी मां तो होगी ? उसका क्या नाम है ?"

अन्धेने उत्तर दिया—"तुम को इससे क्या प्रयोजन ? तुम अपना रास्ता लो।"

अपने पिता को क्रोधित और दुःखित देखकर शान्तिने कुसुम और श्यामासे कहा—"आप इन्हें क्यों तंग करती हैं ? व्यर्थ ही आपने हमारा इतना समय लिया। इतनी देरमें मैं कुछ पैसे मांग लेती। मेरी मां का नाम जानकर आप क्या करेंगी ? मेरी मां का नाम श्यामा था। पिताजी का कहना है कि वह बचपनमें ही मुझे छोड़कर कहीं चली गयी। तबसे यह दुखिया बेटी भीख मांगकर अपना निर्वाह कर रही है।"

उसके उत्तरपर वे दोनों चौंक पड़ीं। कुसुमके संकेतपर श्यामाने अन्धेसे पूछा—"शायद आपका नाम विजयकान्त है ?"

अपना नाम सुनकर उस अन्धेको काठ मार गया। बहुत देरके बाद उसने उत्तर दिया—"हां, मेरा नाम विजयकान्त है। मैं वही विजयकान्त हूं, जिसने धर्म पत्नी को छोड़ा, अपने पुत्र को त्याग दिया और अपनी प्रेमिका का परित्याग किया। उन्हीं पापों का यह परिणाम है कि आज अन्धा होकर मैं भीख मांग रहा हूं। तुम कौन हो?"

विजयकान्त की यह दशा देखकर कुसुम की आंखोंसे आंसू की धाराएं प्रवाहित होने लगीं और दीन-हीन अवस्थामें शान्तिको देखकर श्यामा की आंखें भी बरसने लगीं। परन्तु; शान्ति यह रहस्य समझनेमें बिल्कुल असमर्थ रही। कुसुमने विजयकान्तको अपना और श्यामाका परिचय दिया। इसपर वह और भी लज्जित हुआ। बहुत देरके बाद उसने कहा—"तुम लोगोंके साथ मैंने जो अन्याय किया, उसीका यह परिणाम है। मुझे तो आशा नहीं थी कि तुम लोगोंसे मैं मिल सकूंगा, पर सब भाग्यका खेल है; अधिक क्या कहूं? मुझे क्षमा करो।"

शान्ति पितृ स्नेहका स्वाद ले चुकी थी, किन्तु मातृ स्नेहके स्वादसे अभीतक वंचित थी। श्यामा जिस समय उसके मुखका चुम्बन कर रही थी और उसके आंसू की बून्दें उसके कपोलोंपर गिर रही थीं, उस समय शांति अपूर्व आनन्दका अनुभव कर रही थी। उसने श्यामासे करुणापूर्ण शब्दोंमें कहा—"जब बिल्ली और कुत्ते भी अपने बच्चोंको

दाँतसे लगाये फिरती हैं; उस हालतमें तुमने मेरा परित्याग कैसे किया ?"

श्यामाने उत्तर दिया—"बेटी ! अतीतकी कहानी कहनेसे वातावरण और भी करुणापूर्ण हो जायेगा। इस समय उस कहानी को जानने का प्रयत्न न करो। लेकिन; इतना तो मैं अवश्य कह सकती हूं कि मैंने तुम्हारा परित्याग नहीं किया, बल्कि मुझसे तुम्हें छीन लिया गया।"

विजयकान्तने एक दीर्घ सांस लेकर कहा—"शान्ति, श्यामा का कोई अपराध नहीं है, अपराधी मैं हूं। परन्तु; मेरे पाप का प्रायश्चित तुमको भी करना पड़ रहा है।"

कुसुमने विजयकान्त को घर वापस चलनेका आग्रह किया। विजयकान्तने अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा—"मैं कौन-सा मुख लेकर घर जाऊंगा। शान्तिको अपने साथ ले जाओ। इसकी मुझे बड़ी चिन्ता थी। विवाह योग्य इसकी अवस्था हो गयी है। किसी अच्छे घरमें इसकी शादी कर देना।"

कुसुमने कहा—"प्राणनाथ ? अगर आप घर वापस नहीं चलेंगे, तो मैं भी वापस नहीं जाऊंगी और आपकी सेवामें यहींपर अपने जीवन का शेष भाग व्यतीत कर दूंगी।"

कुसुमके विशुद्ध प्रेम को देखकर विजयकान्त को अपना विचार बदलना पड़ा। वह घर लौटने को तैयार हो

गया। जिस वृक्षके नीचे वह वर्षोंसे रह रहा था, आज उसको छोड़नेमें उसे मोह हो रहा था। शान्ति पेड़की जड़से चीथड़ों को उठाने लगी और उनमें जो पैसे बांधे थे, उन्हें खोल-खोलकर टीनके एक डिब्बामें भरने लगीं, मिट्टी की हण्डी और भोजन करने की मिट्टी की तस्तरियां भी वह कपड़ामें बांधने लगी।

कुसुमने कहा—"इन्हें क्यों बाँध रही हो; इनकी क्या आवश्यकता?"

शान्तिने उत्तर दिया—"फिर भोजन किस चीजमें तैयार करूंगी और किस चीजमें खाऊंगी?"

कुसुमने उत्तर दिया—"अब तुम इसकी चिन्ता छोड़ो। घरपर पीतल, फूल और चांदीके बर्तन हैं। मिट्टीके बर्तनों की वहां कोई पूछ नहीं है।"

शान्तिने आश्चर्यचकित होकर पूछा—क्या तुम चांदीके बर्तनमें खाती हो?"

विजयकान्तने कहा—"बड़े घरोंमें लोग मिट्टीके बर्तनमें क्यों खायेंगे? मिट्टीके पात्रों का व्यवहार हमारे समान कंगले और भिखमंगे करते हैं।"

शान्तिने पूछा—"पिताजी! तब इन सामानों को मैं क्या करूं?"

विजयकान्तने उत्तर दिया—"इसी जगह छोड़ दो।"

वहांसे सब स्टेशन आये। श्यामाने कुसुमसे कहा—

"बहन ? शान्ति का क्या होगा ? क्या समाज इसको शरण देगा ? अगर एक पतिता की सन्तान समझकर समाजने इसका बहिष्कार किया, तो यह बच्ची क्या करेगी ?"

कुसुमने उत्तर दिया—"इसकी चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है; मैं प्रबन्ध कर लूंगी।"

उस दिन प्रथम बार शान्तिने मातृ स्नेह की धारामें गोता लगाया था, लेकिन तृप्ति होनेके पूर्व ही पुनः उससे अलग हो जाना पड़ा। ट्रेन खुलनेके समय उसकी आंखोंमें आंसू छलक आये।

श्यामा अपनी पुत्रीके हृदयका भाव समझ गयी। अपना दिल थामकर उसने शान्तिसे कहा—"विधाता तुम्हारी और मेरी रचना कर स्वयं दुःख पाता होगा। उसने क्यों मेरा जन्म दिया। आज अगर तुम किसी सधवा की पुत्री होती, तो इस स्थितिमें तुम अपनेको नहीं पाती। किन्तु क्या किया जाय ? मेरी संतान होनेके कारण तुम राहकी भिखारिन बन गयी। आज तुम उस समाजमें जा रही हो, जिसने बरबश मेरा धर्म और जाति नष्ट किया है। उसके प्रहारको सह लेना, लेकिन अपना धर्म न छोड़ना। मैं तुम्हारा कल्याण चाहती हूं।

ट्रेन खुलने पर श्यामा लौट पड़ी। स्टेशनके बाहर सड़कके किनारे एक वृद्ध पुरुष एक वृद्ध महिलाके साथ बैठा हुआ था। उसने श्यामासे पूछा—"बेटी ! भागलपुर जानेवाली ट्रेन कब खुलती है ?"

श्यामाने उत्तर दिया—"ट्रेन तो अभी खुली है। अब दस बजे रातमें आप को दूसरी ट्रेन मिलेगी। भागलपुरमें आपका मकान कहां पड़ता है ?"

वृद्धने उत्तर दिया—"रामपुर गांव में।"

श्यामा आश्चर्यमें पड़ गयी। गौरसे देखने के बाद वह पहचान गयी कि वह वृद्ध उसके पिता भोलानाथ हैं और उनके साथमें उसकी मां राधा है। वह उनके चरणों को स्पर्श कर खड़ी हो गयी। भोलानाथ तो उसकी ओर देखते रह गये, किन्तु राधाके मुखसे सहसा निकल पड़ा—"कौन श्यामा !"

भोलानाथने कहा—"कौन श्यामा है ? बेटी तुम कहां ?"

श्यामाने अपनी सारी कहानी कह सुनायी। भोलानाथने एक दीर्घ सांस लेकर कहा—"भाग्य जो न करावे ? खैर तुम रामपुर आ सकती हो। अब मैं तुमको लेकर समाजसे अलग रह सकता हूं। उस समय तुमको अपने साथ न रख कर मैंने बड़ी भूल की थी।"

राधाने भी कहा—"हां बेटी ! चलो रामपुर।"

श्यामाने मां बाप को हाथ जोड़ कर कहा—"आप लोगोंके आशीर्वादसे मेरा जीवन अब अच्छे ढङ्गसे बीत रहा है। रामपुर जाकर फिरसे बवण्डर खड़ा करना अच्छा नहीं है।"

राधाने कहा—"तुम्हारी जो इच्छा।"

श्यामाने पूछा—"आप यहां कहां आये थे ?"

भोलानाथने उत्तर दिया—"ग्रहण स्नान करने।"

राधाने कहा—"संयोग कहो जो तुमसे भी भेंट हो गयी।"

बातचीत में ही दस बज गये। श्यामा उनको ट्रेनमें चढ़ा कर उदास और खिन्न मनसे कला-निकेतन में लौट आयी।"

३९

अनाथालय का विशाल भवन कोसों दूरसे दीख पड़ने लगा। उसके सुन्दर प्रबन्ध की चर्चा देशके प्रायः सभी पत्रोंमें होने लगी। प्रमुख नगरोंमें अनाथालय के कार्यकर्ता रहने लगे और अनाथ बच्चों और महिलाओं की तलाश कर उन्हें अनाथालयमें भेजने लगे। एक वर्षके अन्दर ही जयशङ्कर बाबू की कृति चारों ओर फैल गयी और उनके पास बधाइयां आने लगीं। देशके प्रमुख व्यक्तियोंने उस अनाथालय का निरीक्षण किया और सुप्रबन्ध को देख कर जयशङ्कर बाबू की प्रशंसा की। निरीक्षण पुस्तकमें प्रायः सबने लिखा कि अनाथ बच्चों और महिलाओंके रक्षार्थ जयशङ्कर बाबू का कार्य प्रशंसनीय है। इन्होंने धनाढ्य व्यक्तियों को बतला दिया है कि धन का उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। इनका पथ अनुकरणीय है। इन्होंने देश और समाज का बहुत बड़ा उपकार किया है।"

अनाथालय की चर्चा शान्तिके कानोंमें भी पड़ी। वह उस ओर बहुत ही आकृष्ट हुई। वह उस समाज में, जो उसे घृणा की दृष्टिसे देखता था, रहना नहीं चाहती थी। अपने लिये अनाथालय में रहना वह कहीं उत्तम समझती थी। यह कैसे

सम्भव था कि जिस समाजमें उसकी मां श्यामा को शरण नहीं मिली, उसी समाजमें इसको स्थान मिल जाय। उसकी ओर प्रायः अंगुलियां उठती ही रहती थीं। दरवाजे पर एक कमरेमें उसके रहने का प्रबन्ध था। वह विजयकान्तके मकानके भीतर नहीं जा सकती थी। वह अपने मनमें कहती थी—"यहांके वातावरणसे तो भिखमंगोंके साथ का वातावरण कहीं अच्छा था, जहां मुझसे कोई घृणा नहीं करता था। मुझे क्या मालूम था कि अपराध करे कोई और दण्ड पावे कोई! अगर मुझे इसका थोड़ा भी संकेत मिला होता तो मैं वहांसे यहां नहीं आयी होती और उस बटवृक्षके नीचे जहां मेरी बाल्यावस्था व्यतीत हुई थी और यौवन स्फुटित होने जा रहा था, अपना सारा जीवन बिता देती। चांदी और फूलके बर्तनोंसे तो मिट्टी की तश्तरियां और हण्डियां कहीं उत्तम थीं, जिन्हें छूत लगने का भय नहीं था। यहां तो दासियां फूलोंके बर्तनमें छूत लगने के भयसे ऊपर से ही भात या रोटियां मेरी थालीमें रख देती हैं और अपना रास्ता लेती हैं।"

शान्ति इन व्यवहारोंसे दुःखित रहती थी। उसके लिये इस संसारमें केवल एक विजयकान्त ही अवलम्ब था, लेकिन वह भी अब उससे किनारा कस रहा था। काशीसे आने के बाद विजयकान्तने अपना केश कटवाया, उपवास किया, गंगा स्नान किया, बालू और गाय का गोबर खाया, ब्राह्मणों को भोजन करवाया और उनको दान देकर पवित्र हो गया।

समाजने उसको स्थान दिया, किन्तु उसी की पुत्री शान्ति पवित्र न हो सकी और समाजने उसे विलग रखा।

अपने पिताके व्यवहारसे भी शान्तिके हृदय पर आघात पहुंचा। जब कभी वह उसके पास जाती थी, तब विजयकान्त उसको अपनेसे दूर रहने का आदेश देता था और कभी-कभी तो यहां तक कह डालता था—"अगर तुम मुझसे अधिक सम्पर्क रखना चाहोगी, तो निकाल बाहर करूंगा।"

विजयकान्तके रूखे शब्द उसके कोमल कलेजे पर तीरके समान लगते थे, जिससे वह विकल हो जाती और अपने मनमें कहती थी—"मैंने कब ऐसा सोचा था कि जिस पिता की मैं इतनी सेवा करती हूं और अंगुली पकड़ा कर भिक्षाटनके लिये दरवाजे-दरवाजे घूमाती हूं, वे ही एक दिन मेरा इस प्रकारका तिरस्कार करेंगे? स्वार्थी संसारसे परिचित होने का मुझको यही अवसर मिला है।"

समाजके भयसे कुसुम भी शान्तिसे दूर रहती थी और एकान्तमें उसे समझाया करती थी—"तुम एक पतिता की सन्तान हो, इसलिये समाजमें तुम्हारे लिये कोई स्थान नहीं है। समाज कभी नहीं चाहता है कि तुम्हें आश्रय दिया जाय, लेकिन धनी होने के कारण समाज पर मेरा कुछ प्रभाव है, जिससे तुम यहां रह रही हो, इसलिये तुम्हारा कर्त्तव्य होता है कि तुम हम लोगोंसे दूर रहो और भूल कर भी हमारे सम्पर्कमें आने का प्रयत्न न करो।"

एक दिन कुसुम जब इसी प्रकार की शिक्षा उसे दे रही थी, तब शान्तिने उससे कहा—"क्या अच्छा होता कि तुम मुझे अनाथालयमें पहुंचा देती।"

उसकी बातों पर कुसुम को अति प्रसन्नता हुई। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो उसके हृदय की पीड़ा दूर हो गयी।

शान्तिके साथ कुसुमने अनाथालयमें प्रवेश किया। सर्व-प्रथम उसने प्रभासे भेंट की। प्रभा की देख रेखमें वहां का महिला-विभाग था। प्रभाने उन दोनों को अनाथालयके विभिन्न भागों को दिखलाया। शिशु-सदनमें कुसुमने दो-चार दिनों की अवस्थासे लेकर चार-पांच साल तकके बच्चों को देखा। उनमें अधिकांश बच्चे रेलवे लाईन, बाग-बगीचे और नदी-तट पर पाये गये थे। उन बच्चों को देखकर कुसुम को बड़ी दया आयी और उसके मनमें सहसा भाव उठा कि माता-पिता के पापोंके प्रायश्चित अबोध बालक कर रहे हैं।

बच्चों की सेवाके लिये नर्सों का अच्छा प्रबन्ध था। पांच-सालके बच्चोंको पढ़ने-लिखने क अलावा हस्तकौशल आदि भी सिखलाया जाता था। वे छोटे-छोटे बच्चे कागजके फूल और खिलौने बना लेते थे।

अनाथ महिला विभागमें महिलाओं की संख्या काफी थी। उन महिलाओंमें बहुत तो ऐसी थीं, जो परिवारवालों से तंग आकर घरसे चली आयी थीं, कुछ गुण्डों द्वारा अपहृत की गयी थीं और कुछ ऐसी थीं, जो समाजके नियमों का उल्लंघन करने

के अपराधमें घरसे निकाली गयी थीं। कम उम्र की युवतियों को भी देख कर कुसुम को दया आ गयी। इन महिलाओं को उनकी इच्छाके अनुसार सिलाई का काम, गंजी व मोजा बनाने का काम सिखलाया जाता था। इनमें कुछ ऐसी भी थीं, जो अनाथालयके अस्पतालमें नर्स का काम करती थीं।

यहां कुसुमको कुछ ऐसी भी महिलाएं मिलीं, जो पहले वेश्या-वृत्तिमें थीं, लेकिन अब वे सात्विक जीवन व्यतीत कर रही थीं। यहीं पर उसे कामिनी से, जो कुछ दिन पूर्व नजूमी बाईके नामसे प्रसिद्ध थी, भेंट हुई। परिचय पाने पर कामिनी को लज्जा आयी। कुसुमने कहा—"देखो यही शान्ति है, तुम इसे पह-चानती हो?"

कामिनीने प्रसन्न होकर उसे अपने गलेसे लगा लिया और कहा—"यह तो बड़ी हो गयी। चार-पांच वर्षों तक तो मैंने ही इसका पालन पोषण किया था।"

शान्ति केवल उसकी ओर देखती रही।

डाक्टरी विभाग का कार्य देख कर कुसुम को बड़ी प्रसन्नता हुई। यहां रोगियों की देखरेख का बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध था। शिक्षा विभागमें अशिक्षित महिलाओं और बच्चों को पढ़ाया लिखाया जाता था।

कुसुमने सभी विभागों का निरीक्षण प्रभा और शान्तिके साथ किया और बादमें दयाशंकरके पास पहुंची। उस समय दया-शंकर दफ्तरके कार्यमें व्यस्त था। उसकी बगलमें कुमारी रोज

पत्रों को टाइप कर रही थी। उसके पहुंचने पर सहसा सभी कार्य बन्द हो गये। कुमारी रोज की ओर संकेत कर प्रभाने कुसुमसे कहा—"इनका नाम कुमारी रोज है और ये पाश्चात्य जगत की सुन्दरी हैं। इन्होंने अनाथ बच्चों और महिलाओं की सेवा करने का निश्चय किया है।"

कुमारी रोजने कहा—"लेकिन इसने तुम्हें यह नहीं बतलाया कि दयाशंकर से मिलाने वाली यही कुमारी रोज है।"

प्रभाने मुस्कुरा कर कहा—"अभी तो मैं बोल ही रही थी कि बीचमें तुमने बाधा पहुंचायी।"

इसके बाद प्रभाने दयाशंकर को शान्ति का परिचय दिया और कहा कि यह अनाथालयमें आश्रय चाहती है।

शान्ति का परिचय पाकर दयाशंकर मौन हो गया अतीत की घटनाएं उसकी आंखोंके समक्ष नाचने लगीं। शान्ति भी अपने मनमें सोचने लगी कि क्या यही दयाशंकर हैं, जिन्होंने मेरी माताकी रक्षाके लिये अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया और आज मानव-सेवामें अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

शान्ति की ओर देख कर दयाशंकरने कहा—"चिन्ता करने की कोई बात नहीं है, रहो और कुछ कला सीखो।"

उसकी बातों पर शान्ति की आंखोंमें आंसू भर आये।

शान्ति का नाम अनाथालयके रजिस्टरमें लिख लिया गया और वह महिला विभागमें भेज दी गयी। कुसुम इस प्रकार अपने सर का बोझ अनाथालयमें फेंक घर लौट गयी।

४०

जिस समय मानव-जगत अपना सुख-दुःख भुला कर निद्रा देवीके अंकमें विश्राम ले रहा था, उस समय श्यामा अपने स्वप्न-संसारमें विचरती हुयी अपने जीवनके अतीत की घटनाओं पर विचार कर रही थी। कभी वह हँसती और कभी रोती थी। मुस्कुराने का समय शायद उसके जीवनमें कौमार्य की समाप्तिके बाद नहीं आया, हां उसके बाद की घड़ियां आंसू की लड़ियां पिरोती हुयी बितीं। अपने जीवनमें उसको एक ही व्यक्ति ईमानदार, सच्चा समाज-सेवक, उदार और कर्त्तव्य परायण मिला और वह था दयाशंकर। दयाशंकर की स्मृति ज्योंही मानस पटलसे हटी त्योंही शान्ति चीथड़ोंमें उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। जैसा शान्ति उसका नाम था उसके अनुरूप ही उसने शान्त स्वभाव भी पाया था। वह अनाथिनी की लड़की सबके सामने हाथ पसारती फिरती थी। उसको इस अवस्थामें देखकर श्यामाके नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे। उसने खूब रोया और दिल भर कर रोया। वहां उसको सांत्वना देने वाला कोई नहीं था। अगर उस समय चूहे पर बिल्ली न झपटी होती, तो शायद वह रोती ही रहती। ताखेसे तश्तरीके गिर जाने से उसकी नींद भंग हो गयी। उसने

देखा कि उसका तकिया उसके आंसूसे भींग गया है। उसकी आंखें उस समय भी सजल थीं। आंचलसे उसने आंसू पोंछा। स्वप्न की बातों को स्मरण कर वह और भी विह्वल हो उठी। शान्ति की स्मृतिने उसे व्यग्र कर दिया। उसके बादसे उसे नींद नहीं आयी। शेष रात्रिको उसने अपने जीवनके पृष्ठोंके सिंहाव-लोकनमें ही बिता दिया।

सूर्योदय होनेके एक घण्टा पूर्व वह बिस्तरसे उठ कर कमरेसे बाहर आयी। कला-निकेतन की स्त्रियां अभी सोयी हुयी थीं। हाथ-मुंह धोने के बाद वह गंगाजी स्नान करने गयी और एक घण्टा दिन उठते-उठते निकेतन लौट आयी। जिस समय वह अपने हाथ का गंगाजल नीचे रख रही थी, उस समय वहां की एक महिलाने उससे कहा—"दीदी! रातमें तुम रो रही थी?"

श्यामाने कहा—"हां, इसी प्रकार का स्वप्न मैं देख रही थी। क्या मेरा रुदन तुम सुन रही थी?"

महिलाने उत्तर दिया—"हां,हां, तुमतो जोरोंसे रो रही थी। मैंने कई बार तुमको पुकारा, परन्तु तुम्हारी नींद नहीं टूटी।"

श्यामाने कहा—"बहन, जीवन ही रोनेमें व्यतीत हुआ। और; अधिक क्या कहूं? आज मैं प्रेम नगरका अनाथालय देखने जाऊंगी और एक सप्ताहमें लौटूंगी, तब तकके लिये यहांका प्रबंध तुम्हारे हाथमें सौंपती हूं।"

महिलाने उत्तर दिया—"कोई हर्ज नहीं, तुम जाओ। तुम्हारी अनुपस्थितिमें मैं काम संभाल लूंगी।"

चार बजे संध्या को बनारस एक्सप्रेस खुलता था, जो भागलपुर होकर कलकत्ता जाता था। श्यामाने उसी ट्रेनसे भागलपुरके लिये प्रस्थान किया। दूसरे दिन वह भागलपुर पहुंची। लगभग बारह-तेरह वर्षोंके बाद वह शहर उसके सामने आया था। इस अवधिके बीच शहरमें बहुत परिवर्तन दिखायी पड़ते थे। आधुनिक ढंगके नये-नये मकान देखनेको मिले और जहां बाजार नहीं थे, वहां बाजार बस गये। नगरमें पैर देते ही पिछली स्मृति उसके मस्तिष्कमें नाच उठी। टैक्सीसे वह प्रेमनगर सन्ध्या को पहुंची। संध्याने उसको उस रात्रिका स्मरण कराया, जिस रात्रिको उसी प्रेमनगरमें सामनेके मन्दिरमें जगनदासके कपट-जालमें पड़कर वह कैद हो गयी थी, पर साहस और बुद्धिने उसका साथ दिया; जिससे वह कैदखाने से निकल भागी। प्रेम नगरने उसे उस दिनका भी स्मरण कराया, जिस दिन वह प्रभा की खोजमें वहाँ गयी थी और लोगोंके कटु वचन सुने थे। उसके कई दिन पूर्व इसी प्रेम नगरमें गंगा तट पर उसको विजयकान्त जीवित जलाने का प्रयत्न कर रहा था।

अनाथालयके फाटक पर जाकर टैक्सी रुक गयी। उस भव्य भवन को देख कर वह आश्चर्यचकित हो गयी। जिस समय वह फाटक पर खड़ी थी, उस समय एक महिलाने बहुत ही विनीत शब्दों में उससे पूछा—"बहन, आपको किससे मिलना है?"

श्यामाने कहा—"किससे कहूं? दयाशंकर जी हैं?"

महिला ने उत्तर दिया—"वे तो पटना गये हुये हैं, कल तक लौटेंगे। अगर आप उनसे मिलना चाहती हैं, तो अतिथिशाला में ठहर जाइये।"

श्यामाने कहा—"चलिये, वहीं ठहरा जाय।"

वह महिला उसको साथ लेकर अतिथिशालामें चली गयी। उसके ठहरने का प्रबन्ध कर जब वह चलने लगी तब श्यामाने उससे पूछा—"क्या प्रभा बहन भी यहीं रहती हैं?"

महिलाने उसकी ओर गौरसे देखा और पूछा—"आपका नाम श्यामा तो नहीं है?"

श्यामाने उत्तर दिया—"हां मेरा नाम श्यामा है और आप का? आप भी तो परिचित सी मालूम होती हैं।"

महिलाने कहा—"मेरा नाम कामिनी है।"

श्यामा ने आह भरते हुये कहा—"हम लोगों को यह भी देखने पड़े?"

कामिनीने भी एक दीर्घ सांस लेकर कहा—"हां बहन, जो भाग्यमें बदा रहता है, वह होकर ही रहता है। कहां बसै राहू, कहां बसै रवि शशि, आनि संयोग पड़े। कर्म गति टारे नाहिं टरे।" यह कहते-कहते उसके नेत्रोंसे दो बूंद आंसू टपक पड़े।

श्यामाने कहा—"बहन, भाग्य का दोष न दो, बल्कि भाग्यके निर्माता समाज का दोष दो, जिसने वरवश भाग्यके सहारे हम लोगों को छोड़ कर इस स्थितिमें पहुंचा दिया है।"

कामिनीने कहा—"चाहे जिसका दोष हो, हम लोगों को तो जीवन भर यही रोना रोना है।

श्यामाने कहा—"अतीत की घटनाओं का स्मरण करने से पश्चाताप और दुःख होता है और उसका परिणाम कुछ नहीं निकलता है। हां, उससे भविष्यके लिये सबक लेना चाहिये।"

कामिनी ने कहा—"अभी मैं प्रभा दीदी को बुला कर लाती हूं।"

श्यामा दरवाजे की ओर एक टकसे देखती रही। पन्द्रह मिनटोंके बाद कामिनी प्रभाके साथ लौटी। प्रभा को देखते ही श्यामा इस प्रकार दौड़ पड़ी जिस प्रकार बच्छड़ा गाय को देख कर दौड़ पड़ता है।

अगर कामिनी उनको एक दूसरे अलग कर आसनों पर नहीं बैठाती, तो शायद दोनों एक दूसरे से लिपटी खड़ी ही रह जातीं। प्रभा ने श्यामासे पूछा—"बहन, अच्छी हो न?"

श्यामाने उत्तर दिया—"किसी तरह जीवन की नैया को खेती जा रही हूं, इससे अधिक अपने सम्बन्धमें मैं क्या कहूं? फिर भी मैं भाग्यशालिनी हूं कि तुम्हारे दर्शन हुये। मुझे हार्दिक दुःख है कि मेरे कारण तुम्हारा भी जीवन सुखमय नहीं रहा और तरह-तरहके संकटों का सामना करते हुये अबतक का समय कटा है। मुझे यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुयी कि दयाशंकर जी तुमको मिल गये।"

प्रभाने कहा—"हां मिल गये। यह तुम्हारे ही आशीर्वाद का फल है।"

श्यामाने आकाश की ओर देख कर कहा—"सब भगवान की कृपा।"

प्रभा ने कहा—"शान्ति को भी तो कुसुम यहीं रख गयी है।"

श्यमाने कहा—"वह कहां है?"

कामिनी शान्ति को बुला लाये। वह आते ही उसकी गोदमें जाकर बैठ गयी। बड़े प्रेमसे उसको पुचकारते हुए श्यामा ने पूछा—"विजयकान्त ने तुमको नहीं रहने दिया।"

उत्तर देने के समय शान्ति का गला भर आया। उसने कहा—"वहां मेरा बड़ा अपमान होता था। स्वयं पिता जी मेरी डांट डपट किया करते थे, इसलिये मैं यहां चली आयी हूं।"

श्यामाने उत्तर दिया—"बहुत अच्छा किया तुमने। मुझे तो पहले ही सन्देह था कि वह तुमको वहां नहीं रहने देगा। कोई हर्ज नहीं। जिस दयाशंकरजीने तुम्हारी मांकी रक्षाके लिये इतना बड़ा बलिदान किया, वह दयाशङ्कर जी तुमको कैसे नहीं रख सकते थे? वे मनुष्योंमें देवता हैं। अधिक मैं उनकी क्या प्रशंसा करूं।"

बातें हो ही रही थीं तभी प्रार्थना की घण्टी बजी। श्यामा

भी प्रभा, कामिनी और शान्ति के साथ प्रार्थना सभा में शामिल हुयी। प्रार्थना समाप्त होने पर प्रभा श्यामा को लेकर जयशङ्कर बाबूके यहां गयी और उनको उसका परिचय देते हुये कहा—"यह हम लोगोंसे मिलने आयी है।"

जयशङ्कर बाबू ने कहा—"बड़ी प्रसन्नता की बात है। आखिर इसने तुम्हारे साथ अपनी कृतज्ञता तो प्रदर्शित की। तुम लोगों का उपकार भूला तो नहीं है।"

उनको प्रणाम कर श्यामाने कहा—"पिता जी, मैं आपका भी उपकार नहीं भूल सकती हूं।"

जयशङ्कर बाबूने पूछा—"वह क्या?"

श्यामाने श्मशानकी घटनाका वर्णन किया। जयशङ्कर बाबू ने कहा—"तुम्ही थी।"

श्यामाने कहा—"हां, मैं ही थी।"

जयशङ्कर बाबूने कहा—"विजयकान्त ने जो किया, वह निस्सन्देह अमानुषित कार्य था। उसका फल भी वह पा गया। इससे अधिक उसके सम्बन्धमें क्या कहा जा सकता है।"

इसके बाद जयशङ्कर बाबू चिट्ठी-पत्री देखने में लग गये और प्रभाने श्यामा को भोजन करा कर अतिथिशालामें भेज दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल दयाशङ्कर भी पटनासे वापस आया। श्यामाके आने की सूचना पाकर वह स्वयं अतिथिशाला में उससे मिलने गया। श्यामा उसको देखते ही उसके पैरों पर जा

गिरी। दयाशङ्करने उसको धैर्य बंधाते हुये कहा—"मनुष्य का जन्म ही संकटोंका सामना करने के लिये होता है। हरेक व्यक्ति अपने साथ अपने उत्थान और पतन का इतिहास रखता है। तुम्हारे जीवनका अध्ययनकर समाज बहुत कुछ सीख सकता है। तुमको थोड़ा भी मनमें क्लेश या दुःख नहीं करना चाहिये।"

श्यामाने कहा—"दुःख और क्लेश से ही मेरे जीवन का इतिहास बना है', फिर उसके लिये कौन-सी चिंता? आपके दर्शन हुये, यही मैं अपना भाग्य समझती हूं।"

दयाशङ्करने कहा—"मुझे भी तुमसे मिल कर प्रसन्नता हुयी। शान्ति तो आ गयी है। तुमसे मिली है?"

प्रभाने कहा—"हां मिली है।"

दयाशङ्कर इसके बाद स्नान करने चला गया और प्रभा श्यामा को अनाथालय दिखलाने के लिये ले गयी। वहां की कार्यप्रणाली और सुव्यवस्था को देखकर श्यामा बहुत ही प्रभावित हुयी। उसने मुस्कुराते हुये कहा—"काश! मैं भी अपने यहां ऐसी व्यवस्था कर पाती, तो कितना अच्छा होता।"

प्रभाने कहा—"कला-निकेतन का कार्य बढ़ा सकती हो व्यवस्था भी हो जायगी।"

श्यामाने कहा—"बहन, तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। इसको मैं मानती हूं। कार्यारम्भ होनेपर साधन भी मिल जाता है।"

६ दिनों तक श्यामा वहां रही और सातवें दिन जब वह

बनारस जानेके लिये दयाशंकरसे बिदा मांगने गयी, तब बहुत विनीत शब्दों में उसने कहा—"मैं शान्ति को अपने साथ बनारस ले जाना चाहती हूं।"

दयाशंकरने कहा—"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। वह तुम्हारे साथ रहे, मेरे लिये बड़ी प्रसन्नता की बात होगी"

श्यामाने दयाशंकर और प्रभा को सजल नेत्रोंके साथ "नमस्ते" कहा और बिदा ली।

आगे-आगे श्यामा जा रही थी और पीछे-पीछे शान्ति। दयाशंकर प्रभाके साथ तबतक फाटक पर खड़ा होकर उनकी ओर देखता रहा, जबतक वे उसके दृष्टि-पथसे ओझल नहीं हो गयीं।

अनाथालय में लौटते समय खिन्न शब्दोंमें दयाशंकरने प्रभासे कहा—"समाज श्यामा को भले ही भूल जाय, पर श्यामा समाज को नहीं भूल सकती है।"

॥ समाप्त